निवेदन

महात्मा गान्धीजी आजकल सारे संसार में भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के आदर्शरूप हैं। प्राचीन काल में हमारे देश के ऋषियों और मुनियों की शक्ति क्या थी, और उनका रहन-सहन, इत्यादि कैसा था, इसकी मूर्तिमान जागृत प्रतिमा हमारे सामने महात्मा जी ही हैं।

जीवन के प्रत्येक पहलू पर आपने अपने अनुभव से जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं, वे हमारे लिए बिलकुल अपूर्व न होने पर भी, इस युग के लिए नवीन अवश्य हैं। उन में एक विलक्षण ज्योति है—वह प्रकाश है, जिससे हम अपने जीवन के लिए—इस पश्चिमी सभ्यता के प्रगाढ़ अंधकार में भी—सुगमतापूर्वक मार्ग पा सकते हैं।

अठारह वर्ष की अवस्था से ही महात्माजी अपने जीवन में "भोजन और स्वास्थ्य" के विषय में प्रयोग कर रहे हैं। अपने प्रयोगों पर यद्यपि उनको स्वयं अभी पूरा-पूरा सन्तोष नहीं हुआ है; परन्तु इस में तो कुछ भी सन्देह नहीं है कि प्राचीन ऋषियों के जो आदर्श हमारे शास्त्रों में लिखे हुए हैं, उनके निकट तक बहुत कुछ महात्माजी पहुँच गये हैं; और उनके प्रयोगों में सत्य की मात्रा, वर्तमान समय के किसी भी महापुरुष की अपेक्षा, अधिक है।

भोजन और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में महात्माजी के जितने लेख अभी तक निकल चुके है, उन सब का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है।

संग्रह करने का कार्य श्रीयुत केशवकुमार ठाकुर जी ने किया है। हमारा उद्देश्य सिर्फ इतना ही है कि महात्माजी के इन प्रयोगों से जनता अधिकाधिक लाभ उठावे। महात्माजी के लेखों की ख़ास विशेषता यही है कि उन्होंने जो कुछ 'सत्य' समझा है, वही लिखा है; और योंही नहीं लिखा है कि जैसे अन्य लेखक, बिना अनुभव के ही, लिख मारते हैं—बल्कि पहले स्वयं जिस बात को उन्होंने किया है, उसी को जनता के सामने रखा है। अतएव उनके शब्द, स्वानुभवपूर्ण होने के कारण, हमारे लिए सर्वथा कल्याणकारी हैं।

प्रकाशक

विषय-सूची

—:o:—

पहला परिच्छेद— पृष्ठ

(१) शरीर की रचना १

(२) स्वास्थ्य ५

दूसरा परिच्छेद—

(१) भोजन ८

तीसरा परिच्छेद—(मादक द्रव्य)

(१) शराब और भाँग १६

(२)—(३) अफीम, बीड़ी, तम्बाकू, सिगरेट ... १८

(४) चाय, काफी, कोको २१

चौथा परिच्छेद—

(१) भोजन के अन्य पदार्थ २५

(२) फलाहार २७

(३) वनस्पति ३१

(४) अनाज ३२

(५) मसाला ३६

(६) नमक ३७

(७) दूध ३९

पाँचवां परिच्छेद—

(१) भोजन की मर्यादा ४४

छठा परिच्छेद—

(१) अग्नि से अछूते आहार के प्रयोग ४९

(२) वनपक्व आहार ५६

(३) प्रयोग में कठिनाई ६०

सातवां परिच्छेद—

(१) हवा ६५

(२) उजेला ७६

(३) पानी ७९
आठवां परिच्छेद—
(१) ब्रह्मचर्य के प्रयोग ८४
(२) ब्रह्मचर्य का व्रत ८९
(३) ब्रह्मचर्य और स्वादेन्द्रिय ९१
(४) ब्रह्मचर्य और उपवास ९२
(५) ब्रह्मचर्य और मनोविकार ९३
नवां परिच्छेद—
(१) प्राकृतिक व्यायाम ९६
दसवां परिच्छेद—
(१) स्वास्थ्य और पोशाक १०३
ग्यारहवां परिच्छेद—(रोग और चिकित्सा)
(१) हवा के द्वारा १०८
(२) जल के इलाज १११
(३) मिट्टी के उपचार १२१
बारहवां परिच्छेद—
(१) ज्वर और उसकी चिकित्सा १२५
(२) कब्ज, संग्रहणी, पेचिश, बवासीर ... १२८
तेरहवां परिच्छेद—(छूत के रोग)
(१) शीतला १३२
(२) छूत के अन्य रोग १४२

पहला परिच्छेद

१—शरीर की रचना

मिट्टी, जल, वायु, अग्नि और आकाश इन्हीं पांच तत्वों से संसार बना हुआ है। इन्हीं पांचो तत्वों को लेकर हमारे शरीर की भी रचना हुई है। इसका यह अर्थ है कि शरीर को सुस्थ और आरोग्य रखने के लिए इन पांचों तत्वों की आवश्यकता है। स्वच्छ मिट्टी, स्वच्छ जल, स्वच्छ धूप, स्वच्छ वायु और स्वच्छ आकाश (खुले स्थान) का मिलना हमारे शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इन तत्वों में से एक तत्व का भी न मिलना हमारे अस्वस्थ होने का कारण होता है। जिस तत्व की जिस परिमाण में आवश्यकता है, उस तत्व का उस परिमाण में मिलना ही हमारे शरीर का स्वास्थ्य है।

हड्डी, मांस, रक्त और चर्म से हमारा शरीर बनता है। हड्डियां हमारे शरीर के ढांचे का आधार हैं। उन्हीं के बल पर हम खड़े होते हैं, चलते फिरते हैं। हड्डियां ही हमारे शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करती हैं। हमारे मस्तक की हड्डियां

हमारे मस्तिष्क की और पसलियाँ हमारे हृदय तथा फेफड़े की रक्षा करती हैं। डाक्टरों की गणना के अनुसार हमारे शरीर में २३८ हड्डियाँ हैं। हड्डियों का ऊपरी भाग कठोर और भीतरी भाग पोला तथा नरम होता है। हड्डियां जहां एक दूसरे से जुड़ती हैं, वहां मज्जा का परदा होता है। यह मज्जा भी नरम हड्डियों में ही गिनी जाती है।

हमारे दांत भी हड्डी के हैं। लड़कपन में दूध के दांत होते हैं। कुछ समय में वे गिर जाते हैं और उनके स्थान पर जो दांत निकलते हैं, वे मज़बूत, स्थायी और बुढ़ापे तक रहने वाले होते हैं। दूध के दांत छै और आठ महीने के बाद निकलने लगते हैं और दो-ढाई वर्ष की अवस्था तक प्रायः निकल आते हैं। इनके गिर जाने पर जो स्थायी दांत निकलते हैं, वे अन्न के दांत कहलाते हैं। वे पांच वर्ष की अवस्था से निकलने लगते हैं और सत्रह तथा पचीस वर्ष की अवस्था तक पूरे होते रहते हैं। दाढ़ें सब से पीछे निकलती हैं।

अपने शरीर में मांस के ऊपर ढके हुए चमड़े को छूने से हमको बहुत स्थानों पर मांस का लचलचापन अनुभव होता है। मांस की इस अवस्था को स्नायु कहते हैं। इन्हीं के द्वारा हम अपने हाथ-पैर सिकोड़ते हैं, फैला सकते हैं। अपने जबड़ों को चलाते हैं। आंखों को बन्द करते हैं।

हम इस पुस्तक में शरीर-सम्बन्धी विशेष जानकारी का वर्णन नहीं करना चाहते और ऐसा करने के लिए हमें ज्ञान

तथा अनुभव भी नहीं है। अत एव इसमें हम उन्हीं बातों का उल्लेख करना चाहते हैं जिनको हम स्वयं भली भांति समझ चुके हैं। सब से पहले हम शरीर के मुख्य मुख्य भागों का वर्णन करना चाहते हैं। शरीर का सब से मुख्य भाग पाकाशय अथवा मेदा है। इसकी थोड़ी सी भी त्रुटि से हमारे सारे शरीर में शिथिलता आ जाती है। प्रायः ऐसा होता है कि पाकाशय पर हम इतना अधिक भार लाद देते हैं जिसको पचाने के लिए उसमें शक्ति नहीं होती। पाकाशय का काम है कि हम जो भोजन करें, वह उसको पचाने का काम करे। पाकाशय, हमारे शरीर के लिए, वही काम करता है, जो रेलगाड़ी के लिए इंजिन करता है। पाकाशय, हमारी पसलियों के भीतर बाईं ओर होता है। इसके द्वारा हमारे खाये हुए पदार्थों को अनेक क्रियायें होती हैं, और उनसे अनेक रस तैयार होते हैं। ये रस उन पदार्थों के तत्व हैं, जिनको हम भोजन के रूप में खाते हैं। भोजन के पदार्थों में जो अंश निकम्मा होता है, वह मल-मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। इसके ऊपरी भाग में, कलेजे का बायाँ भाग है। मेदे (पाकाशय) के बाईं ओर तिल्ली है। कलेजा पसलियों के भीतर दाहिनी ओर है। इसके द्वारा रक्त की सफ़ाई होती है और पित्त का जन्म होता है। यह पित्त पाचन क्रिया के लिए बहुत उपयोगी है।

पसलियों के नीचे, खाली जगह में, अन्तःकरण अथवा रक्ताशय और फेफड़े हैं। अंतःकरण की थैली दोनों फेफड़ों

के बीच, बाईं ओर रहती है। छाती में दाहिनी और बाईं ओर की कुल मिलाकर २४ हड्डियां हैं। पाँचवीं और छठी पसली के बीच में कलेजे की धुकधुकाहट होती है। छाती के दाहिनी और बाईं ओर दो फेफड़े होते हैं। श्वास की नली के साथ इनका सम्बन्ध होता है। इनमें हवा भरी रहती है। फेफड़ों से रक्त की शुद्धि होती है। जब हम सांस लेते हैं, तब वायु श्वास की नली के द्वारा हमारे फेफड़ों में पहुँचती है। हमको सदा नाक से सांस लेना चाहिए। नाक से जो हवा जाती है, वह गर्म होकर फेफड़ों में पहुँचती है। मुँह के द्वारा सांस लेना बड़ा हानिकारक होता है। मुँह केवल भोजन करने के लिए है। सांस हमेशा नाक से ही लेना चाहिए।

हमारे शरीर में जो रक्त प्रवाहित होता है, उसके द्वारा हमारा पोषण होता है। वह भोजन में से पोषणकारक अंश को खींच लेता है और निरुपयोगी भाग को मलमूत्र के रूप में बाहर कर देता है। हमारे शरीर को गर्म रखता है। शरीर की नलियों और नसों के द्वारा रक्त सदा दौड़ा करता है। रक्त की गति के कारण ही हमारी नाड़ी एक मिनट में लगभग बहत्तर बार गति करती है। बच्चों की नाड़ी तेज़ चलती है और बूढ़ों की सुस्त।

रक्त को शुद्ध करने का सब से अच्छा साधन है वायु। शरीर में चक्कर लगाकर जो रक्त फेफड़ों में जाता है, वह निकम्मा हो जाता है। उसमें विषाक्त पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। जो हवा भीतर जाती है, वह इस विषाक्त अंश को

खींच लेती है। अपनी प्राणवायु रक्त में छोड़ देती है। यह क्रिया सदा होती रहती है। जो वायु भीतर जाती है, वह रक्त के विषाक्त अंश को लेकर बाहर आ जाती है; और फेफड़ों में पहुँचा हुआ रक्त प्राणवायु को पा कर फिर शरीर में चक्कर लगाना आरम्भ कर देता है। यहां पर यह बात स्पष्ट प्रकट हो जाती है कि जो सांस हमारे शरीर से निकल कर बाहर आती है, वह कितनी विषमयी होती है।

२--स्वास्थ्य

प्रायः लोग स्वस्थ उसी मनुष्य को समझते हैं जो पेट-भर भोजन करता है, ख़ूब चलता-फिरता है और किसी वैद्य या डाक्टर के यहाँ नहीं जाता। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि ऐसा सोचने में लोग भूल करते हैं। ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है कि जो खाते-पीते और चलते-फिरते हैं; किन्तु फिर भी वे रोगी हैं। वे अपनी बीमारी की परवा नहीं करते और अपने आपको नीरोग समझते हैं। बिल्कुल नीरोग मनुष्य संसार में बहुत थोड़े मिलेंगे।

एक अँगरेज़ लेखक का कहना है कि नीरोग उन्हीं मनुष्यों को कहना चाहिए जिनके शुद्ध शरीर में शुद्ध मन का बास होता है। मनुष्य केवल शरीर ही तो नहीं है। शरीर तो उसके रहने की जगह है। शरीर, मन और इन्द्रियों का ऐसा घना सम्बन्ध है कि इनमें किसी एक के बिगड़ने पर बाकी

के बिगड़ने में ज़रा भी देर नहीं लगती। शरीर की उपमा गुलाब के फूल के साथ दी जा सकती है। गुलाब के फूल का ऊपरी भाग तो मनुष्य का शरीर है, और फूल की सुगन्धि मनुष्य की आत्मा है। कागज़ के गुलाब को कोई पसंद नहीं करता। सूंघने से उस में गुलाब की सुगन्धि नहीं आयेगी। असली गुलाब की परख, उसकी बास ही है। जैसे गुलाब के समान दिखलाई पड़नेवाले गन्धहीन फूल को लोग फेंक देते हैं, वैसे ही ऐसे शरीर पर किसी का प्रेम नहीं हो सकता जो ऊपर से देखने में तो अच्छा लगता हो; किन्तु उसके भीतर रहनेवाली आत्मा के व्यवहार ठीक न होते हों। जिनका चरित्र अच्छा नहीं होता, ऐसे मनुष्य नीरोग नहीं समझे जाते। शरीर और आत्मा का ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि जिसका शरीर नीरोग होगा, उसका मन अवश्य ही शुद्ध होगा। पाश्चात्य देश में इस मत को माननेवाले बहुत लोग हैं, उनका विश्वास है कि जिनका मन शुद्ध होता है। उनके शरीर में रोग नहीं होते। और यदि होते भी हैं तो वे मन की शुद्धता के द्वारा सहज ही शान्त हो जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि स्वास्थ्य का मूल साधन हमारा मन है। मन का शुद्ध होना ही सच्चा स्वास्थ्य है।

क्रोध, आलस्य, प्रमाद, ये सब बीमारी के लक्षण हैं। बहुत से डाक्टर तो चोरी आदि कामों को भी रोग ही मानते हैं। विलायत में बहुत सी ऐसी स्त्रियाँ चोरी करती

हुई दूकानों में पकड़ी जाती हैं, जो वास्तव में धनवान् भी होती हैं। किन्तु प्रायः वे बहुत साधारण चीज़ें चुराने में पकड़ी जाती हैं। मनुष्य की इस वृत्ति को वहां पर डाक्टर 'क्लेप्टोमेनिया' की बीमारी कहते हैं। कुछ ऐसे मनुष्य होते हैं जिनका ख़ून-ख़राबी करने का स्वभाव होता है। यह भी एक प्रकार का रोग है।

ऐसी अवस्था में यह कहा जाता है कि जिनका शरीर परिपूर्ण है, शरीर में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है, दांत ठीक हैं, आंख-कान अपना ठीक ठीक काम करते हैं, नाक बहती नहीं, पसीना बदन से ठीक ठीक निकलता है, उसमें दुर्गन्ध नहीं होती, पैर अपना ठीक काम करते हैं, मुख से किसी प्रकार की दुर्गन्ध नहीं आती, मन विषयों में नहीं फँसा रहता, शरीर न बहुत मोटा है और न बहुत पतला, जिनकी इन्द्रियां वश में है—ऐसे मनुष्य ही नीरोग कहे जा सकते हैं। स्वास्थ्य प्राप्त करना और उसका भोग करना, यह साधारण काम नहीं है। बहुत अंशों में हमारे इस प्रकार स्वस्थ न होने का कारण यह होता है कि हमारे माता-पिता इस प्रकार पूर्ण स्वस्थ न थे। एक बहुत बड़े विद्वान् लेखक ने लिखा है कि यदि माता-पिता सब प्रकार से स्वस्थ हों तो उनकी संतान उनसे कुछ योग्य ही होनी चाहिए। विकास-वादी भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। जो मनुष्य पूर्ण रूप से स्वस्थ होता है उसको मौत का भय नहीं होता। हमारा मौत का भय ही इस बात का प्रमाण देता है कि हम

नीरोग नहीं हैं। मृत्यु हमारे जीवन का परिवर्तन मात्र है ओ सृष्टि के नियमानुसार हमारे लिए स्वास्थ्य में सुखदायी होना चाहिए। ऊपर की पंक्तियों में जिस स्वास्थ्य का वर्णन किया गया है, उस को प्राप्त करना हमारा कर्तव्य है।

दूसरा परिच्छेद

१—भोजन

हवा, पानी और अन्न—यही तीनों चीज़ें हमारी ख़ुराक हैं। फिर भी हम लोग साधारण रूप में अनाज को ही ख़ुराक मानते हैं। हम लोग अनाज में केवल दानों की ही गिनती करते हैं। गेहूं, चावल इत्यादि न खानेवालों को हम अनाज खानेवाले नहीं मानते। यह तो मानी हुई बात है कि हवा सब से पहली ख़ुराक है। इसके बिना काम नहीं चल सकता। यह इतनी ज़रूरी ख़ुराक है जिसको हम जाने बिना जाने सदा खाया करते हैं। पानी हवा से घट कर है। किन्तु अनाज से बढ़कर। इसीलिए प्रकृति का प्रबन्ध है कि पानी अनाज की अपेक्षा अधिक सरलता से मिल सकता है। अनाज तीसरी यानी आखिरी दर्जे की ख़ुराक है।

अन्न के सम्बन्ध में अधिक मीमांसा करना एक असाधारण काम है। कौन-सा अन्न कब और कितना खाना चाहिए, इस विषय में बहुत मतभेद है। लोगों की रीतियां

भिन्न भिन्न हैं। एक ही अन्न का प्रभाव भिन्न भिन्न लोगों में भिन्न भिन्न प्रकार से होता है। ऐसी अवस्था में निश्चित रूप से कुछ कहना बड़ा कठिन है और इतना कठिन जो लगभग असम्भव है। संसार के कितने ही स्थानों में मनुष्य को मार कर मनुष्य उसका मांस खाते हैं। यह भी उनका अन्न है। कितने ही केवल दूध पर निर्वाह करते हैं। दूध ही उनके लिए अनाज है। कितने ही जीव मैला खाते हैं। मैला ही उनका अनाज है। ऐसी अवस्था में अन्न का अधिक विश्लेषण करना और उसके सम्बन्ध में कुछ निश्चित बात कहना असम्भव ही है।

अनाज कौन सा खाना चाहिए, इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर देना यद्यपि कठिन है, फिर भी इस विषय पर विचार करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अनाज के बिना किसी मनुष्य का काम नहीं चल सकता। इसी लिए केवल अनाज प्राप्त करने के हेतु हमको सैकड़ों दुःख सहन करने पड़ते हैं। ऐसी अवस्था में यह विचार अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि हम अनाज क्यों खाते हैं? इसके द्वारा हम ठीक ठीक इस बात का विचार कर सकेंगे कि हमें कौन सा अनाज खाना चाहिए। यह बात तो सब लोग मानेंगे ही कि लाख में निन्नानवे हज़ार नौ सौ निन्नानवे मनुष्य तो केवल स्वाद के लिए खाना खाते हैं। इसकी वे परवा नहीं करते कि खाने के बाद हम बीमार पड़ेंगे अथवा अच्छे रहेंगे। न जाने कितने आदमी तो ऐसे

देखे जाते हैं जो अधिक खा सकने के लिए जुलाब लेते हैं अथवा पाचक चूर्णों का प्रयोग करते हैं। कितने ही लोग स्वादिष्ट चीज़ों को ठूँस ठूँस कर पेट में भर लेते हैं और उसके बाद क़ै करके उसको पेट से निकाल देते हैं। इस प्रकार वे तुरंत ही फिर खाने के लिए तैयार हो जाते हैं। कुछ तो ऐसे आदमी होते हैं जो एक ही बार में इतना अधिक खा लेते हैं कि फिर उनको दो दो दिनों तक भूख नहीं लगती। कितने ही आदमी खाते-खाते इतना अधिक खा जाते हैं जो खा लेने के बाद मरते देखे गये हैं। ये सब बातें मैंने अपनी आंखों देखी हैं। मैंने अपने ही जीवन में न जाने कितने प्रकार की बातें देखी हैं, जिनमें से बहुतों की याद आने से हँसी आती है और बहुतो को देख करके लज्जित होना पड़ता है। एक समय था जब मैं सवेरे चाय पीता था, दो तीन घंटे के पश्चात् नाश्ता करता था। दोपहर को एक बजे भोजन करता था, फिर तीन बजे चाय पीता था और अन्त में सन्ध्याकाल, लगभग छः सात बजे फिर पूरा भोजन करता था। उस समय मेरी अवस्था बड़ी करुणाजनक थी। शरीर पर दूषित मांस खूब लदा रहता था। दवा की बोतल सदा पास रहती थी। अधिक खा सकने के लिए प्रायः जुलाब लेता था, और उसके बाद ताक़त के लिए दवाइयां पीता था। ये सब बातें प्रायः हुआ करती थीं। उस समय मुझ में काम करने की जितनी शक्ति थी, उससे तिगुनी शक्ति इस समय—जबकि मेरी उमर ढल रही है—मौजूद है। उस समय जैसी मेरी

अवस्था थी, वैसी अवस्था करुणाजनक होती है। और यदि गम्भीरता के साथ उस पर विचार करें तो वह अवस्था अधिक पापपूर्ण और धिक्कार योग्य मालूम होगी।

मनुष्य न तो खाने के लिए पैदा हुआ है और न वह खाने के लिए जीता ही है। बल्कि वह अपने उत्पन्न करनेवाले को पहचानने के लिए उत्पन्न हुआ है और वह इसी काम के लिए जीता है। यह पहचान शरीर की सहायता के बिना नहीं हो सकती। और ख़ुराक के बिना शरीर का निर्वाह नहीं हो सकता। इसीलिए हमको खाने की आवश्यकता है। हमारे जीवन की यह बहुत ऊँची मीमांसा है। आस्तिक स्त्री-पुरुषों के लिए इतना विचार काफ़ी है। नास्तिक भी मानते हैं कि हमें जीवित रहने के लिए उतना ही भोजन करना चाहिए, जितने से हम स्वस्थ और नीरोग रह सकें।

पशु-पक्षियों को देखिये, वे स्वाद के लिए नहीं खाते। वे ठूंस ठूंस कर भोजन से पेट को नहीं भरते। भूख लगने पर ही वे भूख भर खाते हैं। वे अपना भोजन पकाते नहीं हैं, प्रकृति के बनाये और तैयार किये हुए पदार्थों को खा कर सुखी हो जाते हैं। क्या मनुष्य ही स्वाद के लिए पैदा हुआ है? उन जानवरों में गरीब और अमीर—कोई-कोई दिन में दस बार खानेवाले, और कोई-कोई एक बार भी न पानेवाले, नहीं दिखाई देते। ये बातें केवल मनुष्य जाति में ही हैं। फिर भी हमें जानवरों से अधिक बुद्धिमान होने का घमंड है! इससे सिद्ध होता है कि यदि हम पेट को परमेश्वर मानकर उसकी

पूजा में जिन्दगी बितावें तो हम पशु-पक्षियों से अधिक बे-समझ और बद्तर हैं।

भली भाँति विचार करने से मालूम होगा कि झूठ, चोरी और धोखा आदि पापों का मुख्य कारण हमारी स्वादेन्द्रिय की स्वतंत्रता ही है। स्वाद को वश में रखने से दूसरी बुराइयों का नाश करना हमारे लिए बहुत आसान हो जाता है। लेकिन यहां तो हम खूब खाना और स्वादिष्ट पदार्थों का खाना पाप नहीं समझते। चोरी करने, व्यभिचार करने और झूठ बोलने पर लोग हमसे घृणा करते हैं। इस पर अनेक नैतिक ग्रंथ भी लिखे गये हैं। किन्तु जिनकी स्वादेन्द्रिय वश में नहीं है, उन पर कहीं कुछ नहीं लिखा गया। मानो इस विषय का नीति-अनीति से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि सभी एक ही नाव पर बैठे हैं। सभी जीभ के गुलाम हैं। जब ऐसी अवस्था है तब कैसे हम दूसरे की बुराई पर हँस सकते हैं। भला एक चोर कहीं दूसरे के काम पर हँसता है? हमारे पूर्व-पुरुष भी स्वादेन्द्रिय को अपने वश में नहीं कर सके। या यों कहिए कि स्वाद में उन्हें दोष दिखाई ही नहीं पड़े। बस, इतना लिख दिया कि अपनी इन्द्रियों को वश में रखने के लिए जहां तक हो सके, मिताहारी होना चाहिए। पर यह नहीं लिखा कि स्वाद के कारण और कितनी बुराइयां पैदा हो जाती हैं। सब लोग चोर, ठग, और व्यभिचारी मनुष्य को अपने समाज में कभी रहने न देंगे, किन्तु वे सभ्यताभिमानी

लोग साधारण मनुष्य से सौगुना अधिक स्वाद लेते हैं। और इसे बुरा नहीं समझते ! आजकल बड़प्पन का अनुमान थाली से किया जाता है। जैसे डाकुओं के घर के लोग डाका डालने के काम को बुरा नहीं समझते, वैसे ही हम सब लोग, स्वादेन्द्रिय के गुलाम होने के कारण, उसको बुरा नहीं समझते। उलटे उसमें आनन्द मानते हैं। व्याह-शादी में हम लोग, स्वाद ही के लिए, भोजन करते-कराते हैं। किसी आदमी के मरने पर भी हम स्वाद के भिन्न-भिन्न कर्मकाण्ड मनाते हैं! त्योहार आया कि पकवान और मिष्टान्न बनने लगे ! मेहमान आया कि कड़ाही चढ़ी। कोई भी काम हुआ, जब तक पड़ोसियों, सम्बन्धियों और मित्रों स्नेहियों को ख़ूब पेट भर भर कर खाने को न दिया जाय तब तक वह निन्दा के योग्य समझा जाता है ! निमंत्रित लोगों को जब तक ठूँस-ठूँस कर भोजन न कराया जाय, तब तक कंजूसी साबित होती है। स्कूलों की छुट्टियां आयीं कि पूड़ी-कचौड़ी छनने लगीं। हम यह तो जानते ही हैं कि इतवार के दिन ख़ूब छककर और ठूंस-ठूंस कर भोजन करेंगे ! इस प्रकार हमारे जीवन का जो दोष है, उसको हमने समझदारी और सौभाग्य की बात समझ रखी है ! भोजन की तैयारी में हमने जो-जो ढोंग शामिल कर लिये हैं, उनसे मालूम होता है कि हम अपने आपको बहुत ऊंचा समझने लगे हैं। हमारे जीवन का यह अंधकार बढ़ता जाता है। इस लिए प्रत्येक मनुष्य को इस प्रश्न पर ख़ूब विचार करना चाहिए।

हम अपनी इस अवस्था को दूसरी रीति से भी विचार सकते हैं। प्रकृति ने हमारी आवश्यकता के सभी पदार्थों को यथासमय उत्पन्न करने का काम जारी कर रखा है। इतना ही नहीं, ससार के सारे जीवों की आवश्यकताएँ स्वभावतः पूरी होती हैं और उनका उत्तरदायित्व प्रकृति ने स्वयं अपने ऊपर ले रखा है। प्रकृति के इस कार्य में कोई नवीनता नहीं है। प्रकृति के कार्यों में कभी भूल-चूक भी नहीं होती। उसके कार्यों में न कभी आलस होता है। उस का काम सदा एक सा चला करता है। इसी से प्रकृति को साल भर अथवा दिन भर के लिए अपना भण्डार नहीं भरना पड़ता। हमारी इच्छायें और हमारे कर्त्तव्य भी अपवाद-रहित कानून के वश में हैं। हम इस कायदे को समझकर काम करें तो किसी दिन किसी घर में किसी के भूखो मरने की नौबत ही न आवे। विचारने योग्य बात यह है कि जब हर रोज़ उतना ही अनाज पैदा होता है, जितना संसार के सब जीवों के लिए काफी है, इससे अधिक पैदा नहीं होता, तब यह प्रत्यक्ष है कि यदि कोई अपने हिस्से से अधिक खा ले, या न खाने योग्य चीज़ खा जाय, तो दूसरों के हिस्से में उतनी ही कमी पड़ेगी। राजा-महाराजाओं और बड़े बड़े सेठ-साहूकारों की रसाई में उनके नौकर-चाकरों की आवश्यकता से कहीं अधिक अन्न पकाया जाता है। यह अधिक अन्न वे दूसरों के पेट से लेते हैं, फिर भला दूसरे क्यों न भूखों मरें! यदि दो कुओं का एक ही सोत हो और उनमें आवश्यकता भर के लिए ही पानी

आता हो, तो यह बात स्पष्ट है कि जब एक से पानी अधिक निकलेगा तो दूसरे में अवश्य पानी की कमी पड़ेगी। नियम ठीक है और यह नियम इस लेखक का गढ़ा हुआ नहीं है। वरन् बड़े बुद्धिमान लोगों का कहा हुआ है कि हम अपनी सच्ची आवश्यकता से जितना अधिक खाते हैं, उतना आहार चोरी का है। किसी ने यह ठीक ही कहा है कि चोरी का धन और अन्न कच्चा पारा है। हम स्वाद के लिए जितना खाते हैं, उतना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में हमारे शरीर से अवश्य फूट निकलता है। और उतना ही हमारा स्वास्थ्य नष्ट होता है, जो हमारे दुख का कारण होता है। ऐसी अवस्था में हम सहज ही विचार कर सकेंगे कि हमें कौन-सी चीज कितनी खानी चाहिए।

तीसरा परिच्छेद

मादक द्रव्य

१—शराब और भांग

हमें कौन सी चीज़ें खानी चाहिएं, इसका निर्णय करने के पहिले हमें यह जान लेना चाहिए कि कौन सी चीज़ें न खानी चाहिएं। मुख के द्वारा खानेवाली चीज़ों की गिनती यदि हम अनाज में करें तो शराब, बीड़ी, तम्बाकू, भांग और काफ़ी, कोको तथा मसाला इत्यादि भी अनाज ही हैं। मुझे अपने अनुभव से मालूम हुआ है कि ये सब चीज़ें छोड़ने के लायक हैं। इनमें से कुछ चीज़ों का अनुभव तो मैंने स्वयं किया है और कुछ के सम्बन्ध में मैंने दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाया है।

शराब और भांग को संसार के सभी धर्मों ने दूषित ठहराया है। फिर भी शायद ही कोई उनके पीने से परहेज़ करता हो। शराब से हज़ारों घर धूल में मिल गये। लाखों आदमियों का सत्यानाश हो गया। शराबी को किसी बात का ज्ञान नहीं रहता। प्रायः वह माता, स्त्री और लड़की का भेद तक भूल जाता है। शराब से मनुष्य का मेदा जल जाता

है। अंत में वह पृथ्वी का भार-मात्र हो जाता है। शराबी मोरियों में पड़े नज़र आते हैं। एक अच्छा मनुष्य भी शराब के कारण कौड़ी का तीन हो जाता है। इस व्यसन से घिरे हुए मनुष्य, होश-हवास ठीक होते हुए भी, निकम्मे होते हैं। मन पर उनका अधिकार नहीं होता, सदा शेख-चिल्लियों के से मनसूवे बांधा करते हैं। इसलिए शराब और उसकी सगी बहन भाग—दोनों चीज़ें छोड़ देने के योग्य हैं। इसमें कभी किसी का मतभेद नहीं हो सकता। कुछ लोगों का कहना है कि दवा की भांति शराब के पीने में कोई हर्ज नहीं। परन्तु असल में इसकी भी ज़रूरत नहीं। शराब के भाण्डार-योरप- के डाक्टरों की भी यही राय है। पहले अनेक बीमारियों में शराब काम में आती थी, परन्तु वहां पर अब बिल्कुल ही बंद हो गई है। असल में तो दवा की दलील ही निराधार है। शराब के पक्षपाती दिखाना चाहते हैं कि जब शराब दवा के काम में आ सकती है, तो उसको पीने के काम में लाना क्यों बुरा है? परन्तु विष भी तो दवा की भांति काम आता है तो भी कोई उसे भोजन की भांति बरतने का विचार तक नहीं करता। हो सकता है, कुछ बीमारियों में शराब से लाभ पहुँचता हो; पर उससे हानि इतनी अधिक हो चुकी है कि विचारवान् मनुष्य को चाहिए कि जान जाने दे; परन्तु शराब को दवा के स्थान पर भी काम में न लावे।

जिस शराब से सैकड़ों मनुष्यों की भीषण हानि होती है, उसके द्वारा शरीर का कोई लाभ न हो, यही ज़्यादा अच्छा,

है। हिन्दुस्तान में लाखों मनुष्य ऐसे हैं, जो वैद्य के कहने पर भी शराब नहीं पीते। वे शराब पीकर, अथवा अपनी समझ में बुरी चीज़ों का प्रयोग कर, जीना अच्छा नहीं समझते।

२—अफ़ीम

अफ़ीम का विचार भी शराब के साथ ही करना चाहिए। अफ़ीम का नशा शराब से भिन्न है। फिर भी, उससे शराब से कम बुराई नहीं होती। अफ़ीम के फेर में पड़कर चीन जैसे बड़े राष्ट्र की प्रजा पाई हुई स्वाधीनता खो बैठी। हमारे जागीरदार भी अफ़ीम के चंगुल में पड़कर अपनी-अपनी जागीरों से हाथ धो बैठे।

३—बीड़ी, तम्बाकू, सिगरेट

शराब, भांग और अफ़ीम की बुराइयाँ तो साधारण पाठकों की समझ में भी आसानी से आ जाती हैं; परन्तु बीड़ी और तम्बाकू तथा सिगरेट की बुराई सहज ही लोगों की समझ में नहीं आती। बीड़ी और तम्बाकू ने मनुष्य जाति पर अपना ऐसा असर जमा रखा है कि उसके मिटने में एक जमाने की ज़रूरत है। छोटे बड़े सभी इसके फेर मे पड़े हैं। अच्छे भलेमानस भी बीड़ी सिगरेट का व्यवहार करते हैं। इनके पीने में किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं किया जाता। मित्रों की खातिर करने में ये चीज़ें ही खास तौर पर इस्तेमाल की जाती हैं। दिन पर दिन इनका प्रचार

बढ़ता जाता है। सर्वसाधारण को इस बात की खबर नहीं कि सिगरेट का व्यसन बढ़ाने के लिए सिगरेट के व्यापारी लोग, उसकी बनावट में, हजारों तरकीबें लड़ाते हैं। तम्बाकू में अनेक प्रकार के सुगंधित तेज़ाब छिड़कते हैं और अफ़ीम का पानी मिलाते हैं। इससे सिगरेट हम पर अधिकाधिक अधिकार जमाता जाता है। उसके लिए विज्ञापनबाज़ी में हज़ारों पौंड ख़र्च किये जाते हैं। योरप में सिगरेट-कम्पनियाँ अपने छापेखाने चलाती हैं, बाइस्कोप ख़रीदती हैं, अनेक प्रकार के इनाम बांटती हैं, लाटरियां निकालती हैं और नाटिसबाजी में पानी की तरह पैसा बहाती हैं। इसका यह फल हुआ है कि स्त्रियों को भी सिगरेट पीने की आदत पड़ गई है। सिगरेट पीने पर कवितायें भी बनाई गई हैं। उन कविताओं में सिगरेट को ग़रीब-निवाज़ (दीन बंधु) की उपमा दी गई है।

सिगरेट तम्बाकू से होनेवाली हानियों की गिनती नहीं हो सकती। सिगरेट पीनेवाले मनुष्य का व्यसन इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह बिना किसी की परवाह किये, दूसरे के घर में बिना आज्ञा ही सिगरेट का धुआं निकालने लगता है। उसको किसी की परवाह नहीं होती।

देखा गया है कि सिगरेट और तम्बाकू पीनेवाला मनुष्य इन चीज़ों की प्राप्ति के लिए बहुतेरे अपराध तक कर बैठता है। लड़के माता पिता के पैसे चुराते हैं। जेल में क़ैदी बहुत जोखिम उठाकर सिगरेट रखते हैं। भोजन के बिना तो काम

चल भी जाता है ; किन्तु सिगरेट बिना नहीं चल सकता। लड़ाई में सिगरेट पीनेवाले, सिपाहियों को सिगरेट नहीं मिलता, तो वे ढीले पड़ जाते हैं, फिर किसी काम के नहीं रह जाते।

सिगरेट पर स्वर्गीय टाल्स्टाय ने लिखा है, कि एक मनुष्य के मन में अपनी स्त्री के ख़ून करने का विचार आया। छुरा निकाला, चलाने को तैयार हुआ। इसके साथ ही वह पछताया और पीछे हट गया, फिर सिगरेट पीने बैठ गया। सिगरेट के नशे से उसकी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया। उसके बाद उसने अपनी स्त्री का ख़ून किया। महात्मा टाल्स्टाय तम्बाकू को एक सूक्ष्म प्रकार का, और कई अर्थों में शराब से भी बुरा, नशा मानते थे।

सिगरेट का ख़र्च भी कुछ कम नहीं। कुछ मनुष्यों को चुरुट के पीछे पांच पौंड प्रति मास अर्थात् ७५ रुपये तक ख़र्च करते मैंने अपनी आंखों से देखा है। सिगरेट से पाचन-शक्ति कम हो जाती है। भोजन का स्वाद नहीं मिलता। अन्न फीका मालूम होता है। इसलिए उसमें मसाला इत्यादि डालना पड़ता है। सिगरेट पीनेवालों की सांस से बदबू निकलने लगती है। उसका धुवाँ हवा को बिगाड़ता है। कितनी ही बार मुँह में फफोले पड़ जाते हैं। मसूड़े और दांत काले या पीले पड़ जाते हैं। कितने ही लोगों को इस से भी भयंकर बीमारियां हो जाती हैं। समझ में नहीं आता कि शराब के निन्दक सिगरेट क्यों पीते हैं। सिगरेट का ज़हर

सूक्ष्म होता है। कदाचित् इसीलिए उसका प्रयोग करते हैं। जो नीरोग रहना चाहते हैं, उन्हें सिगरेट पीना ज़रूर छोड़ देना चाहिए।

शराब, तम्बाकू, बीड़ी और भांग इत्यादि व्यसन हमारे शरीर का आरोग्य हर लेते हैं। मन और धन के आरोग्य का भी हरण करते हैं। इनसे हमारे आचरणों का नाश होता है और हम व्यसनों के ग़ुलाम बन जाते हैं।

४—चाय, काफी, कोको

लोगों के मन में यह बैठना बहुत कठिन जान पड़ता है कि चाय, काफी और कोको बहुत बुरी चीज़ें हैं। लेकिन यह मानना ही पड़ेगा कि ये चीज़ें बुरी हैं। इनमें एक विशेष प्रकार का नशा होता है। यदि चाय और काफ़ी के साथ दूध-शक्कर न हो, तो उनमें कुछ भी पुष्टई का अंश नहीं होता। केवल चाय और काफ़ी पर जीवन-निर्वाह करके कितने ही प्रयोग किये गये। सिद्ध यह हुआ कि इनमें खून बढ़ानेवाली चीज़ें बिल्कुल नहीं हैं। हम लोग कुछ वर्ष पहले साधारण तौर पर चाय और काफ़ी नहीं पीते थे। कहीं किसी विशेष अवसर पर या दवा में इसका प्रयोग कर लेते थे। परन्तु अब, नई रोशनी के कारण, चाय और काफ़ी साधारण वस्तुयें बन गई हैं। अब तो हम केवल मिलने के लिए आनेवाले मेहमानों को भी ये वस्तुयें पिलाते हैं—चाय की पत्तियां देते हैं। लार्ड कर्जन के शासनकाल से तो चाय ने और भी अपने हाथ

पैर फैला दिये हैं। उन्होंने चाय के व्यापारियों को उत्तेजना दे-देकर चाय का प्रचार घर-घर कर दिया और जहां पहले लोग आरोग्यकारक चीज़ों का प्रयोग करते थे, वहाँ अब उनकी जगह रोग बढ़ानेवाली चाय का प्रयोग करते हैं।

कोको बहुत नहीं फैला। क्योंकि वह चाय से कुछ मँहगा पड़ता है। सौभाग्य से हम लोगों को इसका परिचय बहुत कम है। फिर भी फैशनेबुल घरों में उसकी पूर्ण सत्ता है।

चाय, काफ़ी और कोको, तीनों चीज़ें पाचन-शक्ति को कम करनेवाली हैं। ये नशे की चीज़ें हैं। क्योंकि जिन्हें व्यसन पड़ जाता है, वे उनको छोड़ नहीं सकते। लेखक खुद भी चाय पीता था। यदि चाय के समय मुझे चाय न मिलती थी, तो आलस्य मालूम होता था। यह नशे की पक्की निशानी है। एक उत्सव में लगभग ४०० स्त्रियां और बच्चे इकट्ठे हुए थे। प्रबन्धकों ने तय कर लिया था कि इनको चाय या काफ़ी न देनी चाहिए। जो स्त्रियाँ आई थीं उन्हें चार बजे चाय पीने की अचूक आदत थी। प्रबन्धकों को ख़बर मिली कि औरतों को चाय न मिलेगी तो वे बेमार पड़ जायँगी, चल-फिर न सकेंगी। यह दशा जानकर प्रबन्धकों को प्रबन्ध बदल देना पड़ा। चाय बन ही रही थी कि शोर मच गया, चाय जल्दी चाहिए। औरतों का माथा चढ़ा हुआ था। उन्हें एक-एक पल एक-एक महीना मालूम होता था। चाय मिलने पर उनके चेहरे खिल गये और उनको होश आ गया। यह एक सच्ची घटना है। एक स्त्री को चाय से

इतना नुक़सान पहुँचा था कि उसे खाना हज़म नहीं होता था। सिर सदा दुखता रहता था। उसके बहुत दवा करने पर भी उसकी यह तकलीफ न गई। लेकिन जब से उसने अपने मन को वश में करके चाय का पीना छोड़ दिया तब से उसकी तबीयत अच्छी रहने लगी। इँगलैण्ड की बेटरसी म्युनिसिपेलिटी के एक डाक्टर ने अनुसन्धान करके बताया है कि इस इलाक़े की हज़ारों स्त्रियों के ज्ञान-तन्तुओं में दर्द होने का कारण उनका व्यसन है। चाय से मनुष्यों के आरोग्य बिगड़ने के बहुतेरे प्रमाण मुझे मिल चुके हैं। मेरा पक्का मत है कि चाय से आरोग्य को बहुत हानि पहुँचती है। काफी के सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है—

"कफ़ छाँटे, बादी हरे, करे धातु-बल छीन।
रक्तहिं पानी सम करे, दो गुन अवगुन तीन॥"

यह ठीक है कि काफी में कफ़ और बादी दूर करने की शक्ति है। लेकिन यही गुण और चीज़ों में भी तो मौजूद हैं। केवल इन्हीं गुणों को ग्रहण करने के लिए यदि अदरक का रस पिया जाय तो आवश्यकता पूरी हो सकती है। इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि हमारे शरीर में वीर्य्य ही सब से अमूल्य पदार्थ है। ऐसी अवस्था में हमारे वीर्य्य को जिस चीज़ से नुक़सान पहुँचे उसके छोड़ देने में ही कल्याण है।

कोको में भी यह सब दोष होते हैं। चाय के समान उसमें भी वे दोष पाये जाते हैं जो चमड़े को बिलकुल संज्ञाशून्य कर देते हैं।

जो लोग आरोग्य में नीति का समावेश करते हैं उनके सामने इन तीनों वस्तुओं के सम्बन्ध में नीचे लिखी दलीलें पेश की जा सकती हैं। चाय, काफ़ी, कोको अधिकतर उन मज़दूरों के द्वारा उत्पन्न की जाती हैं जो शर्त्तबँधे कुली बनकर चाय-बगीचों में जाते हैं। जहां कोको की उपज होती है वहां मज़दूरों पर होते हुए ज़ुल्मों को यदि हम अपनी आंखों से देख लें तो उसके ग्रहण को ज़रा भी इच्छा न करें। कोको के खेतों में होने वाले ज़ुल्मों पर बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। यदि हम सब अपनी ख़ुराक की उत्पत्ति के विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त करें तो सौ में से नब्बे वस्तुओं का त्याग अवश्य कर दें।

इन तीनों वस्तुओं के बदले नीचे लिखे ढंग से निर्दोष और पुष्टिकारक चाय बन सकती है। चाय के स्थान पर इसको मज़े में पी सकते हैं। काफ़ी और इस निर्दोष चाय के स्वाद में इतना कम अन्तर है कि उसे काफी पीनेवाले भी नहीं समझ सकते। पहले गेहूं को साफ़ तवे या कढ़ाही में डालकर चूल्हे पर भूनना चाहिए। खूब लाल हो जाने पर उतार लेना चाहिए और काफी दलने वाली छोटी चक्की में साधारण तौर पर बारीक दल लेना चाहिए। इसमें से एक चम्मच भर कर प्याले में डालकर उसपर उबलता हुआ पानी डाल देना चाहिए। यदि इसे एक मिनट तक चूल्हे पर चढ़ा रहने दिया जाय तो और भी अच्छा हो। आवश्यकता होने पर दूध और शक्कर भी मिलाई जा सकती है। और शक्कर-दूध

के बिना भी इसको पी सकते हैं। पाठक इसका प्रयोग करके देख सकते हैं। इसे ग्रहण करके जो लोग चाय, काफी और कोको छोड़ देंगे उनके पैसे बचेंगे और स्वास्थ्यरक्षा भी होगी।

चौथा परिच्छेद

१—भोजन के अन्य पदार्थ

अभी तक ऊपर की पंक्तियों में उन चीज़ों पर विचार किया गया है जो बिलकुल ही छोड़ देने योग्य हैं। अब आगे उन पदार्थों पर विचार करना है जो हमारे खाने के पदार्थ हैं।

ख़ुराक के विचार से संसार के तीन बड़े-बड़े विभाग हो सकते हैं। पहले विभाग में वे मनुष्य हैं जो अपनी ख़ुशी से अथवा विवश होकर बनस्पति से उत्पन्न चीज़ों पर निर्वाह करते हैं। यह विभाग सब से बड़ा है। इस में हिन्दुस्तान का सब से बड़ा भाग, योरप का बहुत बड़ा भाग और चीन-जापान का अधिक बड़ा भाग आ जाता है। इस भाग के बहुत थोड़े लोग केवल धर्मरक्षा के विचार से वनस्पति का प्रयोग करते हैं। बाक़ी लोग, जो बहुत बड़ी संख्या में हैं, वनस्पति से उत्पन्न पदार्थों का केवल इसीलिए प्रयोग करते हैं कि मांस

आदि प्राप्त करने में वे असमर्थ होते हैं और इसीलिए जब कभी मौका मिल जाता है तो बड़े मज़े में मांस-मदिरा का सेवन करते हैं। इस प्रकार के मनुष्यों में इटालियन, आयरिश, स्काटलैण्ड के अधिकांश मनुष्य, रूस के ग़रीब प्रजा और चीन-जापान के प्रायः सभी लोग गिने जाते हैं। इटली के लोगों का प्रधान भोजन मेकेरोनी, आयरलैंड के निवासियों का पोटेटो (आलू) स्काटलैंड-वालों का ओटमील (जयी) और चीन-जापान-वालों का चावल है। दूसरा भाग उन लोगों का है, जो वनस्पति के साथ कई प्रकार का मांस और मछली आदि एक अथवा कई बार सदा खाया करते हैं। इसमें इंगलैंड का अधिक भाग आता है। साथ ही हिन्दुस्तान के मालदार मुसल्मान और वे धनी हिन्दू, जिनमें मांस खाना धर्म-दृष्टि से बुरा नहीं है, तथा धनाढ्य चीनी-जापानी भी, इसी विभाग में गिने जाते हैं। यह भाग भी बड़ा है; किन्तु पहले के मुकाबले में बहुत छोटा है। तीसरा भाग वह है जिसमें ठंडे देशों के रहनेवाले बहुतेरे जंगली आदमी शामिल हैं। जो केवल मांस खा-खाकर अपना जीवन बिताते हैं। यह भाग बहुत ही छोटा है और वह भी, ज्यों ज्यों योरप के यात्रियों के संसर्ग में आता जाता है, त्यों त्यों अपनी खुराक के साथ-साथ वनस्पति को भी दाखिल करता जाता है। इस विचार से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि मनुष्य तीन प्रकार से जी सकता है। परन्तु हमें तो विचार इस बात का करना है कि सब से अधिक आरोग्य-वर्द्धक खुराक क्या है।

२—फलाहार

शरीर की बनावट पर विचार करने से जान पड़ता है कि प्रकृति ने मनुष्य को वनस्पति खानेवाला बनाया है। अन्य फलाहारी जीवों की बनावट से वह बहुत अधिक मिलता है। बन्दर को लीजिए। यह मनुष्य से मिलता है। इसकी खुराक हरे और सूखे फल हैं। इसके दांत और मेदा—दोनों हमसे बिलकुल मिलते हैं। किन्तु सिंह, बाघ आदि फाड़ खानेवाले जीवों के दांत और उनके मेदे की बनावट हमारे अंगो से सर्वथा निराली है। हमारे शरीर में उनकी भांति पंजे नहीं होते। अन्य निरामिषभोजी—जैसे गाय, बैल इत्यादि पशुओं से भी हम कुछ कुछ मिलते हैं। पर ढेर की ढेर घास खा जाने के लिए उनके जो आंतें इत्यादि हैं, वे हममें नहीं हैं। अनेक वैज्ञानिक इसी आधार पर कहते हैं कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है। इतनाही नहीं, वह चाहे जिस वनस्पति के खाने के लिए भी नहीं बना है। उसकी असली खुराक तो वनस्पति में भी कोई खास-खास फल आदि ही होनी चाहिए।

रसायन-शास्त्रियो ने प्रयोग करके बताया है कि मनुष्य के निर्वाह के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता है, वे सब तत्व फलों में पाये जाते हैं। केले, नारंगी, खजूर, अञ्जीर, सेब, अनन्नास, बादाम, अखरोट, मूंगफली, नारियल आदि में तन्दुरुस्ती के कायम रखनेवाले सार तत्व हैं। इन वैज्ञानिकों का मत है कि मनुष्य को रसोई पकाने की कोई आवश्यकता

नहीं है। जैसे अन्य प्राणियों को सूर्य-ताप से पकी हुई वस्तु पर अपनी तन्दुरुस्ती क़ायम रखनी पड़ती है, वैसा ही हमारे लिए भी होना चाहिए। उनका मन्तव्य है कि पकाकर खाने से वनस्पतियों का सत्व नष्ट हो जाता है और उनकी पोषक शक्ति कम हो जाती है। वनस्पतियों का ख़ास गुण चैतन्य प्रदान करना है, जो पकाने से निर्बल हो जाता है। इन लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि पकाये बिना जिस वनस्पति को हम नहीं खा सकते, वह हमारी खुराक ही नहीं हो सकती।

यदि ऊपर लिखी हुई बात सही है तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे घरों में जो बहुत सा समय रसोई बनाने और खाने में व्यतीत होता है, वह न हो। थोड़े समय में ही खाने का सब काम-काज निपट जाया करे। हमारे स्त्री-समाज का बहुत सा समय जो घर की रसोई बनाने में लगता है, वह बच जाय, और बहुत सी बातों में हम ऐसे स्वतन्त्र हो जांय कि जिससे हम बचे हुए पैसे और समय का बहुत अच्छा उपयोग कर सकें।

इस विषय पर लोग आपत्ति उठा सकते हैं कि यदि सब कोई रसोई बनाना बन्द कर दें, स्त्रियों को रसोई बनाने की क़ैद से छुड़ा दिया जाय, अथवा स्त्रियां ही स्वयं छूट जाना चाहें तो यह सब बातें स्वप्न-की-सी हैं। हो नहीं सकतीं। परन्तु अभी हम इस बात पर विचार नहीं करते हैं, कि सब कोई ऐसा कर सकते हैं या नहीं। हमें तो सिर्फ यह देखना है कि अच्छा क्या है। क्योंकि आरोग्य-सम्बन्धी सब बातें हम समझ

लें, तब कहीं साधारण आरोग्य लाभ कर सकते हैं। इस बात को समझ लेने के बाद कि सर्वोत्तम भोजन क्या है, हम जान सकेंगे कि साधारणतया क्या खाना चाहिए।

एक बात और है। यदि फलाहार उत्तम खुराक हो तो हमें इस बात से विशेष सम्बन्ध नहीं है कि सब उसे ग्रहण कर सकते हैं या नहीं। परन्तु इसमें किसी प्रकार का विरुद्ध मत नहीं हो सकता कि यदि हम ग्रहण कर सकते हैं तो हमें उसका उपयोग क्यों न करना चाहिए।

इस विषय पर योरप में बहुत से ग्रंथ लिखे गये हैं। ऐसे बहुत से अगरेज़ हैं जिन्हो ने फलाहार के प्रयोग की परीक्षा की है। उनमें बहुतों ने अपने अनुभव की बातें प्रकट भी की हैं। ये सब लोग धर्म के कारण फलाहारी नहीं हुए, किंतु आरोग्य के लिए हुए हैं। जुस्ट नाम के एक जर्मन ग्रन्थ-कार ने फलाहार पर एक ग्रथ लिखा है। बहुत से उदाहरण और दलीलें देकर उसने बताया है कि फलाहार उत्तम खुराक है। उसने बहुत से बीमारों के रोग फलाहार और खुली हवा से मिटाये हैं। उसका कहना तो यहाँ तक है कि जिस देश में जो फल मिलते हैं, मनुष्य उन्हीं में से पोषण के लिए सब तत्व पा सकता है।

यहाँ पर मैं अपने ही किये हुए प्रयोग का यदि वर्णन करूँ, तो कुछ अनुचित न होगा। छै महीने से अन्न नहीं खाया। केवल फलों पर ही गुज़र किया है। यहाँ तक कि दूध-दही को भी मैंने नहीं छुआ। मेरी खुराक केले, मूँगफली,

जैतून का तेल, नीबू या इसी प्रकार का और कोई फल तथा खजूर है। मैं नहीं कहता कि यह प्रयोग बराबर फलीभूत हुआ है। क्योंकि ऐसे बड़े भारी फेरफार का प्रभाव जानने के लिए छै महीने पर्याप्त नहीं हैं। परन्तु इतना तो तब भी कहा जा सकता है कि जब और मेरे साथी बीमार पड़े हैं, तब मेरी प्रकृति ठीक रही है। मुझ में पहले जितनी मानसिक और शारीरिक शक्ति थी, उससे अब ज़्यादा बढ़ गई है। शारीरिक शक्ति के सम्बन्ध में मैं कह सकता हूं कि पहले जितना भार मैं उठा सकता था, उतना कदाचित मुझ से न भी उठे; परन्तु पहले जितने समय तक मैं मजदूरी कर सकता था उससे अधिक समय तक—बिना किसी प्रकार की थकावट के--श्रम कर सकता हूं। कितने ही बीमारों पर मैंने इस प्रकार की खुराक की आजमाइश की, तो उसका परिणाम बड़ा ही आश्चर्यकारक हुआ है। उसका वर्णन मैं बीमारी के प्रकरण में करूंगा। कहने का मतलब यह है कि दूसरों के और अपने निजी अनुभव से, और जो कुछ पढ़कर मैंने विचार किया है, उससे इतना जान पड़ता है कि फलाहार एक प्रकार की उत्तम खुराक है।

मैं इस बात को नहीं मानता कि इस प्रकरण को पढ़कर कोई फलाहार का प्रयोग करने लगेगा। मेरे इस लेख का असर शायद ही पढ़नेवालों पर हो, परन्तु मुझे तो सत्य बात लिखना है। और मेरी ऐसी ही धारणा है। फिर मेरा यह कर्त्तव्य है कि जो कुछ मुझे ठीक जान पड़े वही मैं बतलाऊं।

परन्तु किसी पढ़ने वाले के जी में फलाहार का प्रयोग करने की इच्छा हो तो उसके प्रति मेरी यह नम्र सूचना है कि वह एकदम न कूदकर धीरे-धीरे इस विषय के अभ्यास को बढ़ावे। पुस्तक की सभी बातों को पढ़ने के पश्चात् सार खींचकर—समझ कर—जो कुछ उसे उचित जान पड़े, करे।

३—वनस्पति

अब हम दूसरे प्रकार की खुराक पर विचार करते हैं। मेरा विश्वास है कि लोगों को यह ज़्यादा पसंद आयेगी। फलाहार के सम्बन्ध की बातें भी इसे समझ लेने से अच्छी तरह समझ में आ जायँगी। इन पंक्तियों के पढ़नेवालों से मेरी प्रार्थना है कि सब परिच्छेदों को पढ़ लेने के बाद ही वे अपने विचारों का निर्णय करें।

दूसरे दर्जे की खुराक वनस्पति है। इसमें शाक-भाजी, अन्य द्विदल अन्न और दूध आदि का समावेश होता है। जैसे फलाहार में मनुष्य के लिए आवश्यक तत्व मिल जाते हैं उसी प्रकार वनस्पति में भी मिलते हैं। इतना होने पर भी दोनों का असर एक-सा नहीं होता। हमें जो तत्व खुराक से मिलते हैं, उनमें के कितने ही तत्व हवा में भी हैं। उन्हें हवा में से ग्रहण करने पर भी, खुराक के बिना, हम अपना काम नहीं चला सकते। वनस्पति को पकाने से उसका असली तत्व नहीं रहता। वह निर्बल हो जाती है। परन्तु हम बहुत करके वनस्पति को पकाये बिना नहीं खा सकते। यदि मनुष्य को

पकाया हुआ अन्न खाना हो तो यह विचार करना आवश्यक है कि उसमें कौन सी वस्तु अच्छी है।

४—अनाज

सब अन्नों में गेहूँ अच्छा है। अकेले गेहूँ को खाकर मनुष्य अपना निर्वाह कर सकता है। उसमें पोषण करनेवाली सब चीजें ठीक परिमाण में मोजूद होती हैं। उस से अनेक प्रकार की चीजें बन सकती हैं, और सहज में पच जाती हैं। बच्चों के लिए जो तैयार ख़ुराक मिलती है उस में भी कुछ गेहूं का हिस्सा रहता है। गेहूं की श्रेणी में जुआर, बाजरी, जौ, और मक्का भी है। यद्यपि यह चीज़ें गेहूं की समता नहीं कर सकतीं तो भी इन सब की रोटियाँ बनती हैं। यह बात समझने योग्य है कि गेहूं को किस तरह खाना चाहिए। सफ़ेद आटा, जिसे हम मिल-फ़्लावर के नाम से पुकारते हैं, किसी काम का नहीं होता। इस में कुछ सत्व नहीं होता। डाक्टर एलिनसन का कहना है कि इस आटे में जीवनशक्ति नहीं होती। उन्होंने एक कुत्ते को इसी आटे पर रखा था। वह मर गया। पर दूसरे आटे की रोटी पर जो कुत्ता रखा गया था वह ज़िन्दा रहा। सफ़ेद आटे में से गेहूं के छिलके निकाल लिये जाते हैं। स्वाद और शक्ति छिलकों में ही होती है। सफ़ेद आटे की रोटी की ज़्यादा खपत होती है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि मनुष्य अलग-अलग स्वाद लेना चाहते हैं।

इसीलिए सफ़ेद रोटी खाते हैं। जिस भाँति पनीर के खानेवालों को पुष्टिकारक सत्व पनीर में ही मिल जाता है; परन्तु वे उसे रोटी के साथ खाते हैं। ऐसे आटे की रोटी अच्छी नहीं बनती। वह चीमड़ होती है। उस में स्वाद या गुण नहीं रहता। सब से अच्छा आटा तो वह है कि जो ठीक तौर से साफ़ करके अपने घर में ही पत्थर की चक्की में पीसा जाता है। यदि पत्थर की चक्की न मिल सके तो थोड़े मूल्य की हाथ से फेरने की चक्की घर में रख कर अपने आप आटा तैयार करना चाहिए। अथवा बोयर-मिल लेकर उसका उपयोग करना चाहिए। पीसे हुए आटे को बिना छाने काम में लाना चाहिए। इस तरह के आटे की रोटी में स्वाद और सत्व दोनों होते हैं। और यह आटा सफ़ेद आटे की अपेक्षा ज़्यादा दिन भी चलता है। क्योंकि उस में विशेष सत्व होने के कारण थोड़े आटे से ही काम चल जाता है।

यह बात ध्यान में रखने के लायक है कि बाज़ार की रोटियां किसी काम की नहीं होतीं। वे रोटियां सफ़ेद और भूरी हों तो भी उन में मिलावट होती है। एक बात और भी है। और वह यह कि उस आटे की रोटियां ख़मीर डालकर बनाई जाती हैं। यह बड़ा भारी दोष है। बहुत से अनुभव रखनेवालों का कहना है कि ऐसे आटे की रोटी नुक़सान करती है। बाज़ार की रोटियां तैयार करते समय चरबी से चुपड़ी जाती हैं। अतएव वे हिन्दू और मुसलमानों

के खाने योग्य नहीं होतीं। घर पर बनाई हुई फुलकियों और रोटियों को छोड़कर बाज़ार की रोटियों से पेट भरना केवल आलस्य की निशानी समझना चाहिए।

गेहूं के खाने का दूसरा उत्तम और सहज उपाय यह है कि गेहूं को मोटा मोटा दलकर उस का दलिया बनाना चाहिए। फिर इस दलिया को पानी में पकाकर उस में दूध-घी-शक्कर मिलाकर खाना चाहिए। इस का स्वाद भी अच्छा होता है और यह खुराक और खुराकों से अच्छी है।

चावल में सत्व नहीं होता। इस विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अकेले चावल पर मनुष्य का निर्वाह हो सकता है या नहीं। देखा गया है कि उसके साथ दाल, घी, दूध आदि खाये जाते हैं और तभी निर्वाह होता है। गेहूं एक ऐसी वस्तु है कि उसे केवल पानी में भिगोकर खाने से भी मनुष्य तन्दुरुस्त रह सकता है।

शाक-भाजी हम ख़ासकर स्वाद के लिए खाते हैं। उसका गुण रेचक है। अतएव वह कुछ अंशों में रक्त का सुधार करती है। परन्तु कठिनाई से पचती है। क्योंकि वह एक प्रकार की घास ही होती है। इससे कोठे को ज़्यादा काम करना पड़ता है। सब को अनुभव होगा कि जो शाक-भाजी ज़्यादा खाते हैं उनके शरीर की गठन निर्बल होती है। उन्हें बार-बार अपच हो जाता है। वे अजीर्ण की दवा लिया ही करते हैं। यह हम अच्छी तरह से देख सकते हैं कि बहुत सी शाक-भाजियां तो बिलकुल घास ही होती हैं। इससे यह

बात याद रखनी चाहिए कि शाक-भाजी खानी चाहिए, परन्तु बहुत ही कम।

चने, उड़द, मूंग, मोठ, मटर, मसूर, अरहर आदि की दाल बहुत भारी खूराक है। इसे पचाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसके लिए कोठे में गहरी आग चाहिए। इन्हें खानेवाले मनुष्य को बार-बार वायु सरता रहता है। इसका अर्थ यही है कि वे ठीक-ठीक नहीं पचतीं। इन वस्तुओं में यह गुण अवश्य है कि इनसे भूख देर में लगती है—इन्हें खाकर मनुष्य ज़्यादा समय तक रह सकता है। जिस मनुष्य को मजदूरी करनी पड़ती है, उसके लिए इनका खाना ठीक हो सकता है। और उसे फ़ायदा भी हो सकता है। परन्तु साधारणतया कम परिश्रम करनेवाले इन्हें अधिक नहीं खा सकते। मजदूर और गद्दी पर बैठनेवालों की खुराक समान नहीं हो सकती।

डाक्टर हेग इङ्गलैण्ड का एक प्रख्यात लेखक है। उसने बहुत से प्रयोग करके सिद्ध कर दिया है कि दालवाली चीज़ें बहुत ही ख़राब होती हैं। इनसे हमारे शरीर में एक प्रकार का एसिड विष पैदा होता है और उससे हमें बहुत से रोग पैदा हो जाते हैं, जिनके कारण हम जल्दी ही बूढ़े हो जाते हैं। ऐसा होने के उसने बहुत से कारण बताये हैं। जिन्हें यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। मेरा निजी अनुभव यह है कि इन वस्तुओं के खाने से नुकसान ही है। इतने पर भी जिनसे स्वाद न छोड़ा जाय उन्हें ऐसी वस्तु विचार कर खानी चाहिए।

५—मसाला

अब हमें इस बात का विचार करना चाहिए कि वनस्पति में कितनी वस्तुएँ छोड़ने के योग्य हैं। हिन्दुस्तान में लगभग सब जगह मिर्च, मसाला, धनिया, जीरा, काली मिर्च वग़ैरह खाने की बड़ी भारी चाल है। यह चाल और जगह नहीं है। यदि हम इस मसाले की ख़ुराक अफ़्रीका के हबशियों को खिलायें, तो वे भी यकायक इसे न खायेंगे। क्योंकि उन्हें यह बेस्वाद मालूम होती है। बहुत से गोरे—जिन्हें मसाले की आदत नहीं है, हमारे मसालेदार भोजन को नहीं खा सकते। और कदाचित् बेबस उन्हें ऐसा भोजन करना ही पड़े तो उनका कोठा ख़राब हो जाता है। और उनके मुख में छाले पड़ जाते हैं। कितने ही गोरों के सम्बन्ध में यह मैंने स्वयं अनुभव किया है। इससे साबित होता है कि मसाला स्वयं कुछ स्वादिष्ट नहीं है। परन्तु बहुत समय से उसके खाने की हमें आदत पड़ी हुई है, इस कारण हम उसकी गन्ध और स्वाद को पसन्द करते हैं। परन्तु इस बात को तो हम समझ चुके कि स्वाद के लिए मसाला खाना स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाता है।

अब हमें इस बात का पता लगाना चाहिए कि मसाला क्यों खाया जाता है। यह बात तो सब लोग स्वीकार करेंगे कि मसाला खाने का कारण यही है कि खाना ज्यादा खाया जा सके, और अधिक पचे भी। मिर्च, धनिया, ज़ीरा वग़ैरह

का यह खास गुण है कि वह हमारे पेट की अग्नि को अधिक उत्तेजित करता है और इससे हमें विशेष भूख लगती हुई जान पड़ती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं करना चाहिए कि खाया हुआ भोजन सब का सब पच जाता है और उसका उत्तम रक्त बन जाता है। बहुत से मनुष्यों का, जो अधिक मसाला खाते हैं, कोठा ख़राब हो जाता है। और कितनों ही को संग्रहणी हो जाती है। एक मनुष्य को अधिक मिर्च खाने की बड़ी आदत थी। वह उसे छोड़ न सका और जवानी के समय छः महीने पड़ा रहकर अंत में मर गया। इसलिए अपनी ख़ुराक में से मसाले को निकाल देना ही कल्याणकारी है।

३—नमक

जो बात मसाले के सम्बन्ध में कही गई है, वही नमक के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। परन्तु यह बात किसी को पसंद न आवेगी। यहाँ तक कि बहुतों को तो भयंकर जान पड़ेगी। परन्तु यह निश्चित है कि ऊपर जो कुछ मसाले के सम्बन्ध में कहा गया है वह अनुभूत है। विलायत में एक ऐसी मण्डली है, जिसका मत है कि नमक बहुत से मसालों से भी ख़राब वस्तु है। हमारी ख़ुराक में हमें जितना वनस्पति-जन्य नमक मिलता है वह काफ़ी है; और उतने की आवश्यकता भी है। समुद्र या खान का नमक आवश्यक नहीं है। यह जैसा शरीर में जाता है वैसा ही पसीने के

रास्ते या अन्य मार्गों से बाहर निकल जाता है। इसका कोई खास उपयोग शरीर में होता हुआ नहीं जान पड़ता। एक पुस्तक में तो यहाँ तक लिखा हुआ है कि नमक से रक्त बिगड़ता है। जिसने वर्षों से नमक न खाया हो, और दूसरे तरीकों से रक्त को बिगड़ने से बचाकर सुरक्षित रखा हो, उस पर साँप के काटने का कुछ असर नहीं होता। उस रक्त में ऐसे दंशों के प्रभाव को दूर करने की एक खास शक्ति होती है। मैं नहीं जनता कि यह बात ठीक है या नहीं, परन्तु इतना तो मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि खांसी, अर्श, दमा, रक्त-प्रवाह, वगैरह बीमारियों की दशा में नमक छोड़ दिया जाय तो उसका असर तत्काल होता है। एक हिन्दुस्तानी को बहुत समय से दमा और खांसी की बीमारी थी, वह नमक छोड़कर इलाज करने से मिट गई। मैंने न सुना है और न अपने अनुभव से जाना है कि नमक छोड़ने से किसी पर बुरा असर पड़ा हो। मुझे तो नमक छोड़े हुए दो वर्ष हो गये। परन्तु उसका अब तक कोई बुरा असर नहीं पड़ा। बल्कि लाभ ही हुआ है। नमक न खाने से पानी कम पीना पड़ता है और सुस्ती कम आती है। मुझ पर नमक छोड़ने का जो प्रसंग आया था, वह विचित्र ही था। जिसकी बीमारी के लिए मैं ने नमक छोड़ा था, उस की बीमारी सदा थमी रही। यदि वह बीमार भी नमक छोड़ देता तो मेरा विश्वास है कि उसकी बीमारी बिल्कुल अच्छी हो जाती।

नमक छोड़ने वाले को दाल और शाक-भाजी भी छोड़

देनी पड़ती है। मैंने बहुत से प्रयोगों में देखा है कि यह बात बहुत ही कठिन है। परन्तु नमक के त्यागी को हरी तरकारी और दाल छोड़े बिना काम नहीं चल सकता। क्योंकि नमक के बिना दाल-शाक का पचाना कठिन है। इसका यह अर्थ नहीं है कि नमक पाचन-शक्ति को बढ़ानेवाली वस्तु है; परंतु जैसे मिर्च खाने से पाचन-शक्ति बढ़ती नहीं—बढ़ती-सी केवल जान पड़ती है—और अंत में उससे नुक़सान होता है, वही हाल नमक का भी है। नमक छोड़ने वाले को दाल-शाक अवश्य छोड़ देना चाहिए। इस प्रयोग को सब कोई अपने ऊपर ही आज़मा कर उसके असर को देख सकते हैं। जैसे अफीम छोड़ने वाले को थोड़े दिनों तक कष्ट मालूम होता है और शरीर शिथिल-सा जान पड़ता है, वैसा ही नमक छोड़ने वाले को जान पड़ेगा। परन्तु इससे विचलित होने की कोई ज़रूरत नहीं है। धैर्य रखने से नमक छोड़नेवाले को लाभ ही पहुँचेगा।

७—दूध

इस लेखक ने दूध को भी छोड़ने योग्य वस्तुओं में गिनने का साहस किया है। इसका कारण उसका निजी अनुभव है। परन्तु यहां पर उस अनुभव के जिक्र करने की आवश्यकता नहीं। दूध के महात्म्य के सम्बन्ध में हम लोगों को एक ऐसा भ्रम-सा हो गया है कि उसके निकालने का यत्न करना व्यर्थ है। इस लेखक को इस बात का भरोसा नहीं है कि

इस पुस्तक में बतलाये हुए विचारों को पढ़ने वाले स्वीकार करेंगे, और न यही भरोसा है कि जिन्हें ये विचार पसंद होंगे, वे सब इन पर अमल करेंगे। लेखक का मतलब केवल विचारों को प्रकट करना है। इनमें जिन्हें जो विचार पसंद हों, उन्हें वे ग्रहण करें। अतएव दूध के सम्बन्ध में भी लिखना अयोग्य नहीं जान पड़ता। बहुत से डाक्टरों ने लिखा है कि दूध काल-ज्वर पैदा करने वाली वस्तु है। इसके सम्बन्ध में बहुत-सी पुस्तकें और मासिक पत्र निकलते हैं। दूध में हवा लगने से तुरन्त ही हानिकारक जंतु पैदा हो जाते हैं। दूध को ठीक रखने के लिए बहुत-सी झंझटें उठानी पड़ती हैं। दक्षिण अफ्रिका में दूध के कारखानों के सम्बन्ध में कई क़ानून बने हुए हैं कि दूध को कैसे स्वच्छ रखा जाय—बरतन कैसे साफ़ किये जाँय, कैसे रखे जाँय इत्यादि। इस प्रकार जिस वस्तु के लिए बहुत यत्न करने पड़ें और कुछ भूल हो जाय तो नुकसान उठाना पड़े, ऐसी वस्तु छोड़ना चाहिए या रखना चाहिए, यह बात विचारणीय है।

इसके सिवा दूध का अच्छा वा बुरापन इस बात पर निर्भर है कि गाय कैसी है और वह क्या खाती है। क्षयरोग से पीड़ित गाय का दूध पीने से क्षयरोग हो जाने के उदाहरण अनेक डाक्टरों ने दिये हैं और बिल्कुल स्वस्थ गाय का मिलना कठिन है। यदि गाय तन्दुरुस्त न हो तो उसका दूध अच्छा नहीं हो सकता। इस बात को सब कोई जानते हैं कि बीमार

माता के दूध पीने वाले बच्चे भी बीमार हो जाते हैं। दूध पीने वाले बच्चे को बीमारी होती है तो वैद्य बच्चे को दवा न देकर उसकी माँ को दवा देते हैं। कारण यह कि दवा का असर दूध के द्वारा बच्चे पर हो जाता है। इसी तरह गाय के दूध का उसके पीने वाले पर असर पड़ता है। गाय के स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य का प्रभाव भी उसके दूध पीनेवाले पर पड़ता है। जिस दूध में इतनी विडम्बनायें और इतनी जोखिम है, क्या वह छोड़ने योग्य नहीं है? शक्ति देने का जो गुण दूध में बताया गया है, वह अन्य बहुत-सी चीज़ों में है। कई अंशों में जैतून के तेल से इसकी पूर्ति हो सकती है। अथवा बादाम की मींगी को गर्म पानी में भिगोकर उसका छिलका दूर करना चाहिए और उसे पीसकर पानी में मिला लेना चाहिए। इसमें दूध के सारे गुण होते हैं और दूध से उत्पन्न होने वाली खराबियां नहीं होतीं। अच्छा अब कुदरत के नियम की ओर भी ध्यान दीजिए। बछड़े थोड़े ही महीने दूध पीते हैं और दांत आते ही ऐसी चीज़ों का खाना आरम्भ कर देते हैं जो दांतों से खाई जाती है। यही मनुष्य-जाति के लिए भी होना चाहिए। हम केवल बचपन में दूध पीने को बने हैं। हमारे दांत आ जांय, तब हमें सेव वग़ैरह हरा मेवा और बादाम वग़ैरह सूखा मेवा अथवा रोटी चबाना चाहिए। इस बात के निर्णय करने का यह स्थान नहीं है कि दूध की गुलामी से छूटनेवाला मनुष्य कितना पैसा और समय बचा सकता है। परंतु इस बात का मनुष्य

स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि दूध से पैदा होनेवाली चीज़ों की भी आवश्यकता नहीं है। छाछ की खटाई नीबू के सेवन से मिल सकती है। उसके अन्य सत्व बादाम वग़ैरह से मिल सकते हैं; और घी की एवज़ में तेल का उपयोग तो हजारों भारतवासी करते हैं।

अब तीसरे दर्जे की खूराक को लीजिए। यह बनस्पति और मांस के मेल की खूराक़ है। इस खूराक को बहुत से मनुष्य खाते हैं। उनमें बहुत से अनेक रोगों से पीड़ित हैं और बहुत से नीरोग भी देख पड़ते हैं। इस बात को हमारे अवयव और हमारी शरीर-रचना भी प्रत्यक्ष दिखला रही है कि हम मांस खाने के लिए पैदा नहीं हुए। डाक्टर किंग्सफोर्ड और डाक्टर हेग ने इस बात का वर्णन अच्छी तरह किया है कि मांस खाने से शरीर पर बुरा असर पड़ता है। दाल खाने से जो एसिड पैदा होता है वह मांस खाने से भी होता है। मांस खाने से दांतों को नुकसान पहुँचता है, संधि-वात होता है और क्रोध खूब चढ़ने लगता है। जिस मनुष्य को क्रोध आता है वह भी एक प्रकार का रोगी है। हमारी आरोग्य की व्याख्या के अनुसार कोई क्रोधी मनुष्य नीरोग नहीं कहा जा सकता।

चौथे और अंतिम दर्जे की खूराक खानेवाले केवल मांस-भोजी होते हैं। उनके विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं। उनकी दशा इतनी ख़राब होती है कि जिसका विचार करने पर हम कभी मांस नहीं खा सकते। मांस खानेवाले

किसी तरह नीरोग नहीं कहे जा सकते। वे ज़रा उन्नत होते हैं या ज्ञान प्राप्त करते हैं कि तुरन्त उनका चित्त वनस्पति के आहार की ओर दौड़ता है।

इन सब बातों का सार यह है कि केवल फलाहार करनेवाले मनुष्य थोड़े ही निकलेंगे। इसलिये हरे और सूखे फल, गेहूं और ओलिव-आइल का प्रयोग करने योग्य है। इस पर मनुष्य अपनी तन्दुरुस्ती कायम रख सकता है। फलों में केले मुख्य हैं। इसके सिवा खजूर, आलू-बुख़ारा, अंजीर आदि सब शक्ति देनेवाले पदार्थ हैं। अंगूर खून सुधारता है। नारंगी, सन्तरे, सेव एकत्र कर रोटियों के साथ खाये जा सकते हैं। जैतून के तेल से चुपड़ी हुई रोटियों का स्वाद ख़राब नहीं होता। ऐसी ख़ुराक में अड़चन कम होती है और ख़र्च भी कम होता है। इसके सिवा नमक, मिर्च, दूध या शक्कर की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। ख़ाली शक्कर खाना तो बिलकुल ख़राब है। मीठा खानेवाले के दांत शीघ्र ही गिर जाते हैं। ज्यादा मीठे से कुछ लाभ भी नहीं होता। गेहूं, बादाम, मूंगफली, अखरोट और हरे मेवे से अनेक खाने योग्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं।

पांचवां परिच्छेद

—–○○○—–

१–भोजन की मर्यादा

डाक्टरों का इस विषय में बड़ा मतभेद है कि खूराक कितनी खानी चाहिए। एक डाक्टर का कहना है कि खूराक खूब खाना चाहिए। उसने अलग-अलग भोजन के गुणों के अनुसार उनके वजन बतलाये हैं। दूसरे डाक्टर का कहना है कि मज़दूरी करनेवाले और मानसिक श्रम करनेवाले को जुदा-जुदा और विभिन्न परिमाण में भोजन करना चाहिए। तीसरे डाक्टर का कहना है कि क्या मज़दूर और क्या धनी सभी को समान खुराक खाना चाहिए। यह कोई नियम नहीं है कि गद्दीधर थोड़ी और मज़दूर लोग ज्यादा खावें तभी उनका काम चल सके। इस बात को तो सभी जानते हैं कि सबल और निर्बल की खूराक का वज़न एक नहीं हो सकता। स्त्री और पुरुष के आहार में भेद होता है। बड़ों और बच्चों के आहार में भेद होता है। जवान और बूढ़ों के आहार में अन्तर होता है। अन्त के एक लेखक का तो यहां तक कहना है कि यदि खुराक को हम इतना चबाकर खाएँ कि वह बिलकुल रस होकर थूक की भांति अपने आप गले उतर जाय तो हमारा काम आठ-दस तोले खुराक से ही चल सकता है। इस लेखक ने ऐसे हज़ारों प्रयोग करके देखे हैं। उसकी पुस्तकों

की हज़ारों प्रतियाँ बिकती हैं और लोग उन्हें बहुत पढ़ते हैं। ऐसी स्थिति में, कितना खाना चाहिए, इसका वजन बताना व्यर्थ है।

प्रायः यह सब डाक्टरों ने लिखा है कि सौ में निन्नानवे मनुष्य आवश्यकता से अधिक खाते हैं। उन्होंने न लिखा हो तो भी यह बात ऐसी साधारण है कि हम स्वयं भी समझ सकते हैं। ऐसी सूरत में यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कम से कम कितना खाना चाहिए। किन्तु वास्तव में यह कहने की आवश्यकता है कि जब हम .खुराक की मर्यादा के विषय में विचार कर रहे हैं, तब अपनी खुराक को हमें कम जरूर करना चाहिए।

इस के सिवाय खुराक को खूब चबा-चबा-कर खाने की बहुत आवश्यकता है। ऐसा करने से बहुत थोड़ी खुराक में से हम अधिक से अधिक सत्व ग्रहण कर सकेंगे। और हमें हर तरह से लाभ होगा। जो मनुष्य पच जाने के बाद खुराक खाता है, उसका दस्त थोड़ा, बँधा हुआ, कुछ कालापन लिये हुए, चिकना, सूखा और दुर्गन्ध से बिलकुल रहित होता है। जिसे प्राय. दस्त नहीं होता, समझना चाहिए कि उसने ज्यादा और अयोग्य .खुराक खायी है और उसे खूब अच्छी तरह चबाचबा कर थूक की भांति नहीं बनाया है। इस प्रकार मनुष्य अपने दस्त आदि से जान सकता है कि उसने ज्यादा खाया है या कम। जिसने अधिक खाया है उसे सोते समय बेचैनी रहती

है, स्वप्न होते हैं और प्रातःकाल उसकी जीभ बिगड़ी हुई होती है। जो प्रवाही पदार्थों को बहुत खाता और पीता है उसे रात में पेशाब करने को बहुत बार उठना पड़ता है। इस प्रकार, बारीकी के साथ देख कर, मनुष्य अपनी-अपनी ख़ुराक की मर्यादा स्वयं नियत कर सकते हैं। बहुत से मनुष्य ऐसे होते हैं जिनके श्वास में बदबू होती है। उन्हें समझना चाहिए कि नियम से खुराक हजम नहीं हुई। कितनी ही बार देखा गया है कि ज्यादा खानेवालों के फोड़े-फुंसी हो जाते हैं। मुंहासे निकला करते हैं। नाक में फुंसियां हो जाती हैं। परन्तु इन उपद्रवों को वे परवा नहीं करते। कितने ही लोगों को डकारें आया करती हैं और कितनों ही को वायु सरा करती है। इन सब बातों का यह अर्थ होता है कि हमारा पेट पाखाना हो गया है और हम पाखाने की पेटी को अपने साथ-साथ लिये फिरते हैं। यदि हमें अवकाश हो और हम इन बातों पर विचार करें तो हमें अपनी आदतों पर घृणा उत्पन्न हुए बिना न रहेगी। हम सदा के लिए ज्यादा खाना छोड़ देंगे और खाने-पीने तथा ज्योनारों की बात भी न करेंगे। हमारी मेहमानदारी दूसरी ही तरह की हो जायगी। और हम स्वयं सुखी रहकर मेहमान को सुखी बना सकेंगे। दावत का तो हम फिर नाम भी न लेंगे। हम दतौन करने के लिए किसी को न्योता नहीं देते। उसी प्रकार भोजन करना भी एक प्रकार का शारीरिक व्यवहार है, फिर इसके लिए हमें क्यों आकाश-पाताल एक करना चाहिए। मेहमान आये कि हमारी ओर

मेहमान, दोनों की कमबख़्ती आ जाती है। यह क्यों? इसका उत्तर यह है कि हमने अधिक खाने की आदतों से अपने मुँह बिगाड़ डाले हैं। इस कारण हम कुछ न कुछ खाने के बहाने ढूँढ़ा करते हैं। मेहमान को खूब भोजन कराकर उसके यहां खूब भोजन करने की इच्छा करते हैं। इस तरह खाने के एक घंटा बाद ही यदि हम अपना मुँह, किसी स्वस्थ-शरीर-वाले से सूँघने को कहें, और उसके विचार सुनें, तो हमें लज्जित होना पड़ेगा। बहुत से ऐसे भी शौकीन खानेवाले होते हैं जो अच्छा खाने के लिए, भोजन करने के बाद, तुरन्त फ्रूटसाल्ट पियेंगे और उलटी करके फिर खाने को बैठ जायेंगे।

हम सबकी थोड़ी या बहुत ऐसी ही दशा है। इसलिए हमारे महापुरुषों ने हमारे लिए उपवास या रोज़े आदि व्रत बतलाये हैं। रोमन कैथेलिक क्रिश्चियनों में भी बहुत से उपवास हैं। केवल शरीर के आरोग्य के लिए ही यदि मनुष्य हर एक पक्ष में उपवास या एकाशन करे तो भी कुछ बुरा नहीं है। उससे बहुत कुछ फ़ायदा होगा। चौमासे में बहुत से हिन्दू एक बार खाने का व्रत लेते हैं। इस में आरोग्य का रहस्य भरा हुआ है। जब हवा में नमी होती है, सूर्य नहीं देख पड़ता, तब कोठा कम काम करता है। अतएव ऐसे समय में कम ही खाना चाहिए।

अब हम इस बात का विचार करते हैं कि कितनी बार खाना चाहिए। हिन्दुस्तान में प्रायः मनुष्य दो ही बार खाते

हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो तीन बार खाते हैं। वे मजदूर लोग हैं। और जो चार बार खानेवाले हैं, जान पड़ता है, वे अंगरेजी दवाएं प्रचलित होने के बाद पैदा हुए हैं। हाल में अमेरिका और इंगलैण्ड में ऐसी सभायें स्थापित हुई हैं, जो मनुष्यों को दो बार से अधिक न खाने का उपदेश देती हैं। इन संस्थाओं का कहना है कि हमें सुबह का कलेवा न करना चाहिए। रात की निद्रा ही कलेवा का काम करती है। प्रातःकाल के समय हम भोजन करने के लिए नहीं, बल्कि काम करने को तैयार होते हैं। उनका मन्तव्य है कि एक पहर काम कर चुकने के बाद ही हम खाने के योग्य होते हैं। ऐसे मनुष्य दिन में दो ही बार खाते हैं। वे दिन में चाय आदि भी नहीं पीते। इस विषय पर प्रसिद्ध डाक्टर ड्यूई ने एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने कलेवा छोड़ने, कम खाने और उपवास करने के लाभ बड़ी अच्छी तरह बतलाये हैं। आठ वर्ष से मेरा भी यही अनुभव है कि युवा अवस्था के बाद दो बार से अधिक खाने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के शरीर का संगठन हो चुकने के बाद न उसके बहुत बार खाने की आवश्यकता है और न अधिक परिमाण में ही खाने की आवश्यकता है।

छठा परिच्छेद

१—अग्नि से अछूते आहार के प्रयोग

बग़ैर राँधे हुए आहार का जो प्रयोग मैं कर रहा हूं, उसके सम्बन्ध में मेरे पास अंग्रेज़ी और गुजराती के पत्र अच्छी संख्या में आते रहते हैं। कई उसका परिणाम जानने को उत्सुक हैं। कुछ ने बिना पकाये आहार के अपने सफल प्रयोगों का वर्णन भी लिख भेजा है। इन अन्तिम प्रकार के पत्रों से मुझे पता चलता है कि बग़ैर रँधा हुआ (कच्चा) आहार करनेवालों की संख्या देश में काफ़ी है।

मेरे प्रयोग को दो महीने से अधिक समय हो गया। इतने ज़रा-से समय में अन्तिम फल नहीं जाना जा सकता। डाक्टर अन्सारी ने दिल्ली में मेरे शरीर की परीक्षा करके कहा था कि आज मेरा शरीर जितना नीरोग है उतना उन्होंने पहले कभी देखा हो, याद नहीं पड़ता। कोल्हापुर की बीमारी के बाद मेरे खून का जो दबाव १५५ से कम कभी नहीं पाया गया था, इस समय ११८ था; और नाड़ी का दबाव

४८। डा० अन्सारी के विचार में ११८ मामूली से कुछ कम था। मगर इसमें कोई ख़तरा न था। क्योंकि तब मलेरिया के हलके आक्रमण से मैं उठा ही था और केवल रसीले फल खाकर ही रहता था। कमज़ोरी—अगर सचमुच मुझमें हो—के सिवा मैं स्वयं भी और कोई ख़राबी नहीं देख रहा हूं। कमजोरी तो काल्पनिक भी हो सकती है। अतएव कुल मिलाकर यों कहा जा सकता है कि प्रयोग से अभी तो मुझे कोई भी शारीरिक हानि होती दिखाई नहीं पड़ती। अतएव फिलहाल तो प्रयोग चालू रहेगा।

प्रयोग का परिणाम उत्तम हुआ है। इसका कारण ऐसी ख़ूराक के प्रति मेरा पक्षपात भी हो सकता है। जहां तक विकारों के साथ ख़ूराक का सम्बन्ध है, कहा जा सकता है कि विकारों पर भी इस प्रयोग का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। आज मैं जिस सुन्दर मनःस्थिति का अनुभव कर रहा हूं, वैसी स्थिति का अनुभव दक्षिण अफ्रीक़ा में जब मैं कच्ची ख़ूराक खाता था, तब किया था। दक्षिण अफ्रीक़ा के प्रयोग में और आज के प्रयोग में बड़ा भेद तो यह है कि पहले में शाक या गेहूं आदि अनाज का कोई स्थान न था। 'ट्यूबर क्लोसिस' पर लिखे गये डाक्टर मूथू के ग्रंथ और कर्नल मैक कैरिसन की 'आहारप्रवेशिका' नामक उपदेशपूर्ण और सावधानी से लिखी गई पुस्तिका को पढ़कर प्रयोग को जारी रखने का मेरा निश्चय कहीं अधिक बलवान हो गया है। पहली पुस्तक में आहार

पर उम्दा प्रकाश डालनेवाला एक प्रकरण है और दूसरी में, जो कि भारत-सन्तानों को समर्पित की गई है, बड़ी सरल और संक्षिप्त भाषा में गृहस्थ के लिए आवश्यक आहार-सम्बन्धी तमाम उपयोगी बातें बताई गई हैं। यह पुस्तक बड़ी सावधानी के साथ पढ़ी जाने योग्य है। मेरे विचार में ग्रन्थकार ने प्राणिज अन्न (जैसे; मांस और दूध) पर बहुत ज्यादा जोर दिया है, यद्यपि उनके लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है। वनस्पति-जगत में मनुष्य के सम्पूर्ण पोषण की जो अनन्त सामग्री पड़ी है, वर्त्तमान मेडिकल (औषधि)-विज्ञान ने इस क्षेत्र को अछूता ही रहने दिया है। और सहज स्वभाव के वश होकर मांस, और मांस नहीं तो दूध, या उसके अन्य पदार्थों पर ही ज़ोर दिया है। भारतीय चिकित्सकों का, जो परम्परा से शाकाहारी हैं, कर्त्तव्य है कि वे इस कार्य को पूरा करें। विटामिन या जीवनतत्व के नवीन आविष्कारों, और सीधे सूर्य से महत्व के विटामिन पाने की सम्भावना ने चिकित्सा-शास्त्र द्वारा प्रस्थापित और स्वीकृत आहार-सम्बन्धी कई सिद्धान्तों में क्रान्ति का क्षेत्र खड़ा कर दिया है। और चाहे जो हो, दोनों ग्रन्थकार इस बात पर तो मुझे एकमत होते मालूम पड़ते हैं कि तमाम खाद्य पदार्थ उनकी प्रकृत अवस्था में ही खाने चाहिएँ, बशर्ते कि हम उनसे ज्यादा लाभ उठाना चाहते हों और ख़ासकर अगर हम उनमें के कुछ महत्व-पूर्ण जीवनतत्वों को नष्ट न कर देना चाहते हों। उनका मत है कि आग से कुछ जीवनतत्व नष्ट हो जाते हैं,

और गेहूं के मैदे में से एवं पालिश किए हुए चावल में से क्षार और जीवन-तत्त्व का मोटा भाग निकल जाता है।

इस समय की मेरी खूराक का परिमाण यों है:—

पिसे हुए अंकुरित गेहूं	...	८ तोला
पिसी हुई बादाम	...	४ "
मग्ज बादाम	...	१ "
ककड़ी या आल	...	२० "
खट्टे नींबू	...	२ दाने
सूखे दाख (किसमिस)	...	२० दाने
शहद	...	४ तोला

एक महीने तक नमक नहीं लिया था। फिलहाल कुछ डाक्टर मित्रों के चेतावनी देने से और प्रयोग की दृष्टि से सिर्फ ३० ग्रेन नमक ले रहा हूं।

ऊपर बतलाई गई खूराक दो भागों में ली जाती है। सवेरे छै बजे एक तोला बादाम (मग्ज) चबा लेता हूं। गर्म पानी के साथ शहद तीन बार पीता हूं। दैनिक कार्यक्रम में अब तक किसी तरह की रुकावट नहीं आई है। न वजन घटा है।

पहिले मेरा ख़याल था कि कोई मेरे प्रयोग का जल्दी से अनुकरण न करें। मगर अब मैं कह सकता हूं कि दूध-घी के साथ जो यह प्रयोग करना चाहें, निश्चिन्त होकर कर सकते हैं। अगर वे क्रम-क्रम से बढ़ेंगे और अनाज को खूब चबा-चबाकर खायँगे तो हानि की ज़रा भी संभावना नहीं रहेगी, बल्कि लाभ की पूरी आशा रक्खी

जा सकती है। हां, खूराक का परिमाण ठीक-ठीक बनाए रखना चाहिए। अगर थोड़ा भी मुँह बिगड़े, हिचकियां आने लगें, क़ै या वमन हो, तो समझना चाहिए कि कोई न कोई पदार्थ ज्यादा खा लिया गया है। दूध लेनेवालों को बादाम की कोई ज़रूरत नहीं रहती, और चूंकि दूध-घी तो लेते ही हैं, अतएव बादाम को छूना भी न चाहिए। घी के बदले कच्चा—पानीवाला—नारियल पीस कर गेहूं चने के साथ लिया जा सकता है। नारियल का पिसा हुआ गूदा एक बार में चार तोला से ज्यादा न लिया जाय। मेरे प्रयोग में इस समय चने नहीं है। मगर प्रयोग करनेवाले अंकुरित चने या मूंग, बिना किसी भय के, ले सकते हैं। अगर नमक लेना हो तो थोड़ा लिया जाय। चार तोला गेहूं और दो तोला चनों से शुरुआत करने में कोई खटका नहीं रहता। मुझे शाक अधिक लेना पड़ता है। आम तौर पर उतना लेना जरूरी नहीं है। जिन्हें कब्ज़ियत हो, पालक आदि की भाजी लें। यह भाजी भी एक बार में चार तोले से ज्यादा न ली जाय। मेरे प्रयोग में शहद है, जो प्रत्येक प्रयोगकर्त्ता के लिए जरूरी नहीं है। कुछ दिनों के प्रयोग के बाद अगर किसी तरह का बखेड़ा न मालूम हो, जीभ साफ रहे और दस्त खुलकर आवे, तो आवश्यकतानुसार गेहूं चने का परिमाण बढ़ाया जा सकता है। मज़बूत दांतवाले नारियल को छोड़कर और कोई भी चीज़ पीस कर न खायें। शुरुआत में दांत और जबड़े दुखने लगेंगे,

इस से कोई डरे नहीं। यह थकावट बतलाती है कि हमने दांत और जबड़ों का उपयोग करना—उन्हें कसरत देना छोड़ दिया था, उन पर अत्याचार किया था। ऊपर बतलाई खूराक को चबाने में कम से कम आधा घन्टा लगेगा, इस से भी ज्यादा लगे तो कोई घबरावें नहीं, न जल्दी-जल्दी चबाना शुरू करें। जब तक खूराक भली भांति पिसकर मुँह में लपसी न हो जाय, तब तक उसे गले के नीचे न उतारा जाय। इस तरह अधिक से अधिक पैंतालीस मिनट में जितना चबाया जाय, उतना चबाकर, जो बच रहे उसे दूसरी बार खाना चाहिए। इस खूराक में गेहूं, चने, और नारियल तो सवेरे से सांझ तक खुशी-खुशी रह सकते हैं। ली हुई भाजी के चबा जाने से कोई अड़चन नहीं होगी। चबाते-चबाते अगर बच ही जाय तो फेंक दी जा सकती है। सूखे दाख के बदले एक केला लेना अधिक अच्छा है। दिन भर में दो केलों से ज्यादा की ज़रूरत नहीं होती। इस से भी अच्छा तो यह है कि मौसमी फल लिये जांय। सूखे फलो की अपेक्षा ताज़े फल अच्छे होते हैं।

गुड़ लिया जा सकता है। सफ़ेद चीनी तो हरगिज़ न लेनी चाहिए। क्योंकि वह स्पष्टतया हानिकारक है। सूखे मेवे, अंजीर या खजूर से आवश्यक चीनी हमें मिल सकती है, लेकिन इनका उपयोग भी बहुत परिमित होना चाहिए। अगर जरूरत हो तो गेहूं की मात्रा बढ़ा दी जा सकती है। शुरुआत में कुछ समय तक पेट खाली-खाली-सा मालूम पड़ेगा।

इसका कारण पेट का वह दुरुपयोग है, जो हम लोग करते रहते हैं। जब तक वह अपनी पूर्व-स्थिति में न आ जाय, हम इस कष्ट को सहन कर लें। ऐसी भूख रसीले फल खाकर, कुछ अधिक भाजी लेकर, या अच्छी मात्रा में शुद्ध पानी पीकर कम की जा सकती है। गेहूं या चने की बतलाई हुई मात्रा में वृद्धि करके नहीं, अगर हालत खुशहाल हो तो, दूध अवश्य ही बढ़ाया जा सकता है। इस समय तीस से भी अधिक साथी मेरे साथ यह प्रयोग कर रहे हैं। उनके लिए जो ज्यादा-से-ज्यादा परिमाण रक्खा गया है, वह यों है।

अंकुरित गेहूं	...	२० तोला
” चना	...	८ ”
भाजी	...	१६ ”
नारियल	..	८ ”
दाख	.	४ ”
नींबू	..	१ ”
दूध	...	आधा पौण्ड
ताज़े फल जब मिल जाय		
नारियल के बदले में दूध	...	२ तोला

गाँवो में, जहां भाजीपाला मुफ्त मिल सकना चाहिए, बिलकुल नहीं मिलता। इसका कारण सिर्फ़ अज्ञान और आलस्य ही है। थोड़ी-सी ही मेहनत से खेत के एक हिस्से में या घर के आंगन में थोड़ी-बहुत शाक-भाजी पैदा की जा सकती है। भाजी उगाने में तो कुछ भी परिश्रम नहीं होता।

बहुतेरी भाजी तो अपने आप उग आती है। ऐसी बहुतेरी भाजी खाने योग्य भी होती है। और इस प्रयोग में भाजी एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। हर तरह को भाजी कोमल होनी चाहिए, और उसे पानी से भली भांति साफ़ कर लेना चाहिए। आलू वग़ैरह भी बूढ़ी न हो। इनकी छाल न निकाली जानी चाहिए। हां, छाल को बोथी छुरी से घिस कर साफ़ कर लेना चाहिए। बहुमूल्य क्षार छाल के नीचे ही रहते हैं। छाल निकालकर शाक का गूदा-मात्र रखने से शाक की क़ीमत आधी रह जाती है।

जो इस लेख को पढ़कर प्रयोग करने को ललचाएं, वे नियमानुसार प्रयोग शुरू करें। नियमित-रूप से रोज़नामचा लिखें। हर एक वस्तु को तौलकर लें और उसकी क़ीमत भी लिखते रहें। शरीर में मालुम होनेवाले परिवर्तन और मल-मूत्रादि की स्थिति भी नोट करते रहें। इस तरह का टिप्पणीपूर्ण रोज़नामचा उनके खुद के लिए और दूसरों के लिए भी मार्गदर्शक होगा। प्रयोग शुरू करते समय अपने शरीर का वज़न करा लेना चाहिए।

२—अनपक्व आहार

जो पत्र मेरे नाम आते हैं उन से मुझे पता चलता है कि इस प्रयोग के नतीजों को जानने के लिए बहुतेरे पाठक उत्सुक हैं। यह भी मालुम होता है कि कुछ पाठकों ने इसे शुरू भी किया है। अतः अगर हो सका तो मैं हर हफ्ते

उद्योग-मन्दिर में किये जानेवाले प्रयोग के बारे में लिखने की आशा रखता हूं।

शुरुआत में तो उत्साहवश लगभग ४० व्यक्तियों ने प्रयोग शुरू किया है। उन में कुछ स्त्रियाँ और बालक भी थे। किसी को मना करने की मेरी इच्छा न हुई। बालकों ने तो जल्दी छोड़ दिया, फिर स्त्रियाँ भी छोड़ बैठीं। अब इक्कीस व्यक्ति प्रयोग कर रहे हैं, जिन में एक स्त्री है। जो टिके हैं उन के प्रयोग में से ठीक-ठीक सीखने को मिल रहा है। आज-कल लगभग सब ने दूध छोड़ दिया है। इस कारण प्रयोग और भी कठोर होगया है। इस बात की तफसील में जाने की जरूरत नहीं है। इन दिनों गोपालरावजी मन्दिर में आए हैं; और उन्होंने खूराक का परिमाण बढ़ाया है। अब तक के अवलोकन के आधार पर कह सकता हूं कि:—

१—जो दूध के साथ प्रयोग करें, उन्हें कमज़ोरी का कोई डर रखने की ज़रूरत नहीं है।

२—कच्चे अंकुरित गेहूं और द्विदल पचाने में कोई भी कठिनाई नहीं होती।

३—प्रयोग में नारियल के दूध से अच्छी-सी सहायता मिलती है। नारियल को 'कस' कर उस में उसी का या दूसरा पानी मिलाकर साफ़ खादी के रूमाल में छान लेने से दूध निकल सकता है।

४—हद से ज्यादा ली हुई खूराक, अन्य खूराक की ही तरह नुकसान पहुँचाती है।

५—इस खूराक से मन को अधिक शान्ति मिलती है। शरीर शीतल रहता है, विकार दबते हैं।

६—भूख रहने पर गेहूं और द्विदल का परिमाण न बढ़ाकर नारियल का परिमाण बढ़ाना चाहिए।

७—सम्भव है, दूध छोड़ने वाले को शुरुआत में खूब कमजोरी का अनुभव हो।

८—खूराक को खूब चबाना ज़रूरी है।

९—अगर निश्चित आहार से ज्यादा खाने में आ जाय तो या तो उपवास करना चाहिए या एक बार खाना चाहिए, या गेहूँ और द्विदल छोड़ने चाहिएं।

१०—कब्ज़ रहने की हालत में शाक और नारियल का दूध ही लेना चाहिए। एक दिन में एक नारियल का दूध लिया जा सकता है।

११—शाक में कोमल लौकी, तुरई, गिलकी, ककड़ी, मूली (पत्तों समेत), कोहड़ा, टमाटर, भिन्डी और भाजी-मात्र ली जा सकती है।

१२—खट्टे नीबू दिन में दो तक लिये जा सकते हैं। नीबू का छिलका फेंका न जाय, बल्कि उसे महीन काटकर खा लिया जाय, अथवा रस निचोड़ने से पहले, बीज अलग करके, उसे भी 'कस' लिया जाय, जिससे वह एक रस होकर चटनी का काम देगा, इसे शाक या गेहूं और द्विदल के साथ खा सकते हैं।

१३—पक्के केलों से अधिक तृप्ति होती है। केलो के

बदले दाख या काले दाख लिये जा सकते हैं।

१४—दूध अगर अच्छा और ताज़ा मिले तो कच्चा ही लेना चाहिए।

१५—शुरुआत में वजन घटेगा ही। इससे तनिक भी भयभीत न होना चाहिए। बहुधा वजन अनावश्यक पदार्थों का बना होता है, जो हानिकारक भी होता है।

१६—सम्भव है कि पेट खाली-खाली मालूम हो। सच्ची भूख का यह लक्षण नहीं है। राँधा हुआ और अधिक आहार करने से अन्नकोष बढ़ जाता है। वनपक अन्न थोड़ी ही जगह रोकता है। अतएव जब तक अन्नकोष अपनी प्रकृत अवस्था में न लौट आए तब तक पेट खाली-खाली मालूम होता ही रहेगा। यह शिकायत कुछ दिनों बाद अपने आप मिट जायगी।

१७—शरीर में फुर्ती और शक्ति का होना, दस्त साफ़ होना, आरोग्य की उम्दा निशानी है। साधारण शक्ति बनी रहे और दस्त नियमित रूप से साफ़ होता रहे तो समझना चाहिए कि खूराक मुआफिक हुई है।

१८—दूध छोड़नेवाले को एक से दो तोला तक बादाम तीन हिस्सों में चबानी चाहिए। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि बादाम से शक्ति कायम रहती है।

इस पर से पाठक समझेंगे कि इस प्रयोग में खूब सावधानी की ज़रूरत है। 'हाय हाय में आम नहीं पकते।' सब किसी का अनुभव एक सरीखा नहीं होता। अगर प्रयोग

होशियारी और फ़िक्र के साथ किया जाय तो तनिक भी हानि होने की सम्भावना नहीं है। नाज़ुक जठराग्नि वाले मनुष्य के लिए यह खुराक प्रतिकूल नहीं, बल्कि अनुकूल है। कब्ज़ के रोगी के लिए कच्चा शाक और नारियल का दुध बहुत लाभप्रद है। प्रयोग करनेवालों में से एक-दो को छोड़कर औरों ने दो-तीन पौंड वजन गुमाया है। प्रयोग निष्फल तो नहीं हुआ है, साथ ही अभी यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह सफल हुआ है। यह इष्ट है कि जिसे इस तरह का थोड़ा भी अनुभव नहीं है वह अभी इस प्रयोग को शुरू न करे। प्रयोग अभी इस हद तक नहीं पहुँचा है कि दूसरों को भी उसके लिए उत्साहित किया जा सके।

३—प्रयोग में कठिनाई

इस सप्ताह आशाप्रद प्रगति का ज़िक्र करने के बदले मुझे एक दु:खान्त किस्सा कहना पड़ता है। वनपक आहार का क्षेत्र एकदम नया है। बड़े प्रयत्न और सावधानी के साथ प्रयोग करने पर भी आख़िर मुझे हार खानी पड़ी। पेचिश की मामूली मगर लगातार शिकायत के कारण मुझे बिछौना पकड़ना पड़ा। यही नहीं, बल्कि राँधे हुए अन्न से एक कदम आगे बढ़कर बकरी का दुध भी लेना पड़ा। डा० हरिलाल देसाई ने बड़ी चतुराई और धैर्य के साथ इस बात की कोशिश की कि मुझे फिर से दूध न लेना पड़े, क्योंकि पिछले नवम्बर में मैंने दूध इसी आशा से छोड़ा था कि फिर

कभी न लूंगा, मगर उन्होंने देखा कि विना दही या मट्ठे के आंतों से टपकनेवाली आँव और खून को बन्द करने में वह सर्वथा असमर्थ थे। अतएव ये पंक्तियां लिखते समय तक मैं दो वार करके थोड़ा-थोड़ा दही ले चुका हू। इसका क्या असर होगा, सो तो मैं इस लेख के, जिसे रविवार की रात को लिख रहा हूं, अन्त में लिखूँगा।

मालूम होता है कि जो कच्चा आहार मैं करता था, उसे बराबर पचा नहीं पाता था। पिछले दिनों खुलासा दस्त होने की जो बात मैं कह चुका हूं, वह भी कोई शुभ चिन्ह नहीं, बल्कि पेचिश की पूर्व-भूमिका ही थी। मगर कुल मिलाकर स्वास्थ्य ठीक और सशक्त होने के कारण किसी बुराई की आशंका की कोई वजह न थी।

मेरे साथियों में से भी एक-एक करके बहुत-सों ने प्रयोग छोड़ दिया है। चार साथी अभी टिके हैं, जिनमें एक तो करीब साल भर से कच्चा खा रहे हैं, और उनके विचार से वे अपने प्रयोग में काफी सफल हुए मालूम पड़ते हैं।

साथियों के प्रयोग छोड़ देने का कारण यह है कि वे दिन-दिन कमज़ोर हो रहे थे और हर सप्ताह वजन खोते जा रहे थे।

इस तरह श्री० गोपालराव का यह दावा कि वनपक्व आहार हर प्रकृति और हर उम्र के स्त्री-पुरुषो के लिए उपयुक्त है, यानी छोटे, बड़े और नीरोग सब कोई लाभ उठा सकते हैं, बहुत पोचा—असिद्ध—साबित होता है। इस दिखाई देनेवाली सफलता से उत्साहियो को चेत जाना चाहिए और

अपने बयान में बड़ी सावधानी, सचाई और संयम से काम लेना चाहिए और बड़ी छानबीन के साथ किसी निश्चय पर पहुँचना चाहिए।

मैं सफलता को भासमान या दिखाई देनेवाली इस लिए कहता हूं कि अग्नि से अछूते आहार में आज भी मुझे वही विश्वास है, जो आज से क़रीब चालीस साल पहले था। नाकामयाबी का कारण तो यह है कि अग्नि से अछूते आहार के प्रयोग की विधि और उसकी ठीक-ठीक मिक़दार का मुझे सच्चा ज्ञान न था। इस प्रयोग के जो दो-चार अच्छे परिणाम निकलते हैं वे सचमुच आश्चर्यजनक हैं। किसी को गम्भीर पीडा नहीं उठानी पड़ी। जिस किसी डाक्टर ने मेरे स्वास्थ्य की जाँच की है, हरएक ने उसे पहले से बेहतर बतलाया है। अपने साथियों के लिए मेरी रहनुमाई, एक अन्धे रहनुमा के अन्धे साथियों-सी थी। मुझे इस बात का दुख है कि इस प्रयोग के लिए कोई ऐसा रहनुमा न मिला ज़िसे अग्नि से अछूते आहार की बारीकियों से जानकारी और एक वैज्ञानिक का-सा धैर्य प्राप्त होता।

लेकिन अगर मेरी तन्दुरुस्ती ठीक हो गई और मुझे थोड़ा अवकाश मिला तो मैं इन ग़लतियों से बचने का लाभ उठाकर फिर से कच्चे अन्न का प्रयोग शुरू करने की आशा रखता हूँ। एक सत्य-शोधक के नाते मैं इस बात की खोज करना आवश्यक समझता हूं कि मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा को स्वस्थ रखने के लिए सम्पूर्ण आहार क्या हो सकता है।

मेरा विश्वास है कि इस तरह की खोज अग्नि से अछूते आहार को लेकर ही सफल हो सकती है, और मैं यह भी मानता हूं कि अन्तहीन वनस्पति-जगत में दूध का सम्पूर्ण स्थान ले लेनेवाली कोई न कोई वनस्पति अवश्य है। क्योंकि यह तो हरएक डाक्टर (मेडिकल मैन) कबूल करता है कि दूध के अपने कुछ दोष हैं और कुदरत ने भी उसे छोटे बच्चों और पशुओं के बछड़ों के लिए बनाया है। मनुष्यों के लिए नहीं। अतः जो शोध मेरी दृष्टि में एक नहीं, बल्कि अनेक दृष्टियों से इतना आवश्यक है, उसके लिए किया गया कोई भी त्याग मेरी राय में महँगा न होना चाहिए। अतएव आज भी मैं इस काम में दिलचस्पी लेनेवाले सज्जनों की सलाह और रहनुमाई की आशा रखता हूं। जो लोग मेरे जीवन के इस अंश से सहानुभूति नहीं रखते और मेरे प्रति अपने प्रेम के कारण मेरे लिए चिन्तित हैं, उन्हें मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं ऐसा कोई प्रयोग न करूँगा जिससे मेरे दूसरे कामों को क्षति उठानी पड़े। मेरी अपनी राय तो यह है कि यद्यपि मैं १८ वर्ष की उम्र से ऐसे प्रयोग करता रहा हूं। मुझे बहुत कम बार गम्भीर बीमारियों का मुकाबला करना पड़ा है, और मैं साधारणतया अपने स्वास्थ्य को भी सुन्दर रख सका हूँ। मैं चाहता हूं कि मेरे साथ वे भी यह महसूस करें कि जब तक ईश्वर इस दुनियाँ का कोई काम मुझसे कराना चाहेगा, तब तक के लिए वह क्षति से मेरी रक्षा करेगा और मुझे मर्यादा से बाहर जाने से रोकेगा।

जो लोग प्रयोग कर रहे हैं, वे मेरी क्षणिक रुकावट से प्रभावित होकर उसे छोड़ न दें। मेरी असफलता के कारण से वे कुछ-न-कुछ सीख ज़रूर लें।

१— यह ध्यान रहे कि अगर इस बात का थोड़ा भी ख़तरा हो कि भोजन बराबर चबाया नहीं जाता है, तो खूराक को बारीक चबाकर मुँह में घुल जाने दो, वैसे ही न निगल जाओ।

२—अगर मुँह में कुछ ऐसा अंश रह जाय जो घुल नहीं सकता, तो उसे बाहर निकाल डालो।

३—अनाज और दाल का बहुत थोड़ा उपयोग करो।

४—हरी भाजी तथा शाक पहले खूब धो लो और बाद में उसकी छाल को ऊपर-ऊपर से छीलकर खाओ। इसका परिमाण भी थोड़ा ही रहे तो अच्छा।'

५—आरम्भ में तो आहार की मुख्य चीज़ों में ताज़े और सूखे फल (भिगोए हुए) तथा नारियल वग़ैरह ही होना चाहिए।

६—जब तक कच्चा आहार करते-करते काफी लम्बा समय निर्विघ्न न बीत जाय तब तक दूध न छोड़ना ही अच्छा है। मैंने इस सम्बन्ध में जितना साहित्य पढ़ा है, सब में फल, मूल, नारियल और थोड़ी हरी भाजी पर ही जोर दिया है और उसी को सम्पूर्ण खूराक कहा है।

सातवां परिच्छेद

——○०○——

१—हवा

शरीर की रचना का विवेचन करने से जान पड़ता है कि शरीर को तीन प्रकार की खुराक की आवश्यकता है। हवा, पानी और अन्न। इनमें सबसे ज़्यादा आवश्यक वस्तु हवा है। प्रकृति ने हवा इतनी ज़्यादा रखी है कि वह हमें मुफ़्त मिलती है। इतना होने पर भी वर्तमान समय के सुधार ने हवा को बहुमूल्य कर दिया है। वर्तमान समय में हमें हवा के लिए दूर-दूर देशों में जाना पड़ता है। और दूर जाने में पैसे ख़र्च होते हैं। बम्बई के रहनेवालों को माथेरान में हवा खाने को मिले तो उनकी प्रकृति सुधरती है। और बम्बई में मलाबार-हिल पर रह सकें तो उन्हें अच्छी हवा मिल सकती है। परन्तु ऐसा करने के लिए टके चाहिए। डरबन में रहनेवाले को अच्छी हवा प्राप्त करना हो तो उसे वोरिया जाना चाहिए। ये सब बातें पैसे के बिना पूर्ण नहीं की जा सकतीं। अतएव आजकल के ज़माने में यह कहना सर्वथा उचित नहीं गिना जा सकता कि हवा विना मूल्य मिलती है।

हवा विना मूल्य मिले या मूल्य में, परन्तु इसके विना

हम एक घड़ी भी अपना निर्वाह नहीं कर सकते। हम बता चुके हैं कि रक्त सारे शरीर में फिरता है। वह फेफड़ो में आकर स्वच्छ होता है। और स्वच्छ होकर फिर चक्कर मारना आरम्भ कर देता है। यह क्रिया हमारे शरीर में दिन-रात होती रहती है। सांस बाहर निकालकर हम विषैली हवा को बाहर निकालते हैं और सांस लेकर हम हवा से प्राण वायु को भीतर पहुँचाते हैं। उसके द्वारा रक्त को शुद्ध करते हैं। यह श्वास-प्रश्वास चलता रहता है। इसी पर शरीर की ज़िन्दगी का आधार है। मनुष्य पानी में डूबकर मर जाता है। इसका अर्थ इतनाही है कि वह प्राणवायु को शरीर में नहीं पहुँचा सकता। और भीतर की विषैली हवा को बाहर नहीं निकाल सकता। डुबकी लगानेवाले बख़्तर पहनकर पानी में उतर जाते हैं। उन्हें पानी के बाहर निकली हुई नली के द्वारा बाहर की हवा पहुँचती रहती है। इससे वे अधिक समय तक पानी में रह सकते हैं।

कितने ही वैद्यों के प्रयोगों से साबित हुआ है कि यदि मनुष्य को हवा के बिना रखा जाये, तो पाँच मिनट में उसके प्राण निकल जायँगे। प्रायः देखा गया है कि माँ की रज़ाई में लिपटा हुआ बच्चा दम घुट जाने के कारण मर गया है। यह मृत्यु बालक के नाक और मुँह के बन्द हो जाने के कारण बाहर की हवा न मिलने से हो जाती है।

इन बातों से हम समझ सकते हैं कि हवा हमारी सबसे आवश्यक खुराक है। और वह हमें बिना मांगे मिलती है।

पानी और अन्न माँगने और खोजने से हमें मिलता है। परन्तु हवा तो हमें इच्छा किए बिना मिलती रहती है।

जैसे हम ख़राब पानी और अन्न ग्रहण करते हुए हिचकिचाते हैं, वैसे ही हमें हवा के सम्बन्ध में भी ध्यान रखना चाहिए। परन्तु हम जितना ख़राब अन्न-जल ग्रहण नहीं करते, उतनी ख़राब हवा ग्रहण करते हैं। इसका कारण यह है कि हम मूर्तिमान वस्तु को ही देखते हैं। हवा आँखों से नहीं देख पड़ती है। इस लिए हम इस बात का विचार नहीं कर पाते कि हम कितनी ख़राब हवा ग्रहण करते हैं। दूसरे के जूठे अन्न-जल को हम न खाते हैं और न पीते हैं, और हमें यदि उससे घृणा न भी हो तो ऐसे अन्न-जल को हम कभी ग्रहण न करेंगे। अकाल के मारे हुए मनुष्य के सामने भी ऐसी खुराक रखी जाय तो वह मरना पसन्द करेगा, पर उस खुराक को ग्रहण न करेगा। परन्तु दूसरों की फ़ूँक की हुई—प्रश्वास के द्वारा बाहर निकाली हुई—हवा को हम सब, बिना किसी प्रकार की घृणा के, ग्रहण करते रहते हैं। आरोग्य-शास्त्र के नियमानुसार यह हवा भी उस अन्न-जल के समान ख़राब ही है। ऐसा सिद्ध किया गया है कि एक मनुष्य का प्रश्वास दूसरे मनुष्य के फेफड़े में प्रविष्ट कर दिया जाय, तो उस दूसरे मनुष्य का तुरन्त ही मरण हो जायगा। प्रश्वास के इतने विषैले होने पर भी, उसे एक कोठरी में ठसाठस बैठे हुए या सोते हुए मनुष्य ग्रहण करते रहते हैं। मनुष्य का सौभाग्य है कि हवा ऐसी चञ्चल वस्तु है कि वह

सदा चलती रहती है और सर्वत्र फैल जाती है। इतना ही नहीं, बारीक से बारीक छिद्रों में भी वह प्रविष्ट हो जाती है। एक ओर कोठरी में इकट्ठा होकर हम हवा को ख़राब करते हैं; और दूसरी ओर दरवाज़ों की सन्धियों और छप्पर के छिद्रों में से जो थोड़ी बहुत बाहर की हवा आती रहती है, उससे हम बिल्कुल प्रश्वास की ही हवा को ग्रहण नहीं करते। किन्तु हमारी बाहर निकली हुई हवा की निरन्तर शुद्धि होती रहती है। खुली हवा में हम प्रश्वास छोड़ते हैं तो वह क्षण भर में बाहर की हवा में फैल जाती है और उत्तम हवा की जो मिकदार (परिमाण) है उसे कुदरत रख लेती है। हवा बहुत बड़े विस्तार में इस छोटी-सी पृथ्वी के चारों ओर फैली हुई है।

अब हम समझ सकते हैं कि बहुत से मनुष्य निर्बल और बीमार क्यों रहा करते हैं। जहाँ तक देखा गया है, सौ में निन्नानवे की बीमारी का कारण ख़राब हवा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। क्षय, बुख़ार और अनेक प्रकार के जो छूत के रोग हैं, उन सब का कारण हमारी ग्रहण की हुई हमारी खराब हवा है। अतएव इन रोगों को दूर करने का पहला और अंतिम सहज उपाय यही है कि हम अच्छी से अच्छी हवा को ग्रहण करें। इस उपाय को संसार में कोई वैद्य, डाक्टर या हकीम नहीं पहुँच सकता। क्षयरोग फेफड़े सड़ने की निशानी है। और फेफड़ा सड़ता है विषैली हवा से। जैसे इंजिन में खराब कोयले भरने से वह ख़राब हो

जाता है, वैसे ही खराब हवा के भरने से फेफड़े खराब हो जाते हैं। इस कारण समझदार डाक्टर क्षय के रोगी को चौबीसों घंटे खुली हवा में रखने का पहला उपाय करते हैं। अन्यान्य उपाय वे इस के बाद करते हैं।

फेफड़ों के द्वारा हम हवा को ग्रहण करते हैं, इतना ही नहीं, कुछ-कुछ त्वचा के द्वारा भी उसे ग्रहण करते हैं—त्वचा में जो असंख्य सूक्ष्म छिद्र हैं, उनके द्वारा हवा को ग्रहण करते हैं। अतएव इस बात को जानना प्रत्येक मनुष्य का काम है कि इतनी भारी आवश्यक वस्तु (हवा) कैसे स्वच्छ रखी जा सकती है। वास्तव में तो ऐसा होना चाहिए कि जब से बच्चा कुछ समझदार होने लगे, तभी से उसे हवा की आवश्यकता का ज्ञान करा देना चाहिए। इन परिच्छेदों के पढ़नेवाले इस सहज परन्तु अत्यन्त आवश्यक काम को करने का प्रयत्न करेंगे और स्वच्छ हवा के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान सम्पादन कर उसके अनुसार चलेंगे और अपने बाल-बच्चों को भी सब बातें समझाकर उसी भाँति चलाने का यत्न करेंगे, तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

हमारे पाखाने, हमारे बाड़े और ऐसे पेशाब करने के स्थान, जहाँ पेशाब-घर नहीं होता, हवा खराब होने के प्रधान साधन हैं। बहुत ही कम मनुष्य ऐसे हैं, जिन्हें पाखाने की गन्दगी से होते हुए नुकसान का अनुमान हो। कुत्ते-बिल्ली जो पाखाना फिरते हैं, तो बहुत करके वे अपने पंजों से, ज़मीन को खोदते हैं और उस गढ़े में पाख़ाना फिर कर उस

पर मिट्टी डाल देते हैं। जहां पर सुधरे हुए ढंग के पानी के नलवाले पाखाने नहीं हैं वहां पर ऊपर की भांति क्रिया करने की ज़रूरत है। हमें अपने पाखानों में एक हौज राख या सूखी मिट्टी से भर रखना चाहिए, और जब-जब हम पाखाने जावें, तब-तब हमें, मैले को राख या सूखी मिट्टी से अच्छी तरह बंद कर देना चाहिए। ऐसा करने से बदबू नहीं फैलती और मक्खी-मच्छड़ वग़ैरह उड़नेवाले जीव-जंतु मैले पर बैठकर हमारे शरीर को नही छू सकते। जिनकी नाकें ख़राब नहीं हैं या जिन्हें मैले की दुर्गन्ध सहने की आदत नहीं हो गई है वे अच्छी तरह जान सकते हैं कि मैला खुला रखने से हवा में कैसी बदबू फैलती है। हमारे खाने में यदि कोई मैला मिलाकर हमारे सामने रख दे, तो हमें क़ै हो जायगी; परन्तु हम मैले की बदबू से भरी हुई हवा क्या श्वास के द्वारा खाते नहीं हैं ? सच बात तो यह है कि ऐसी हवा और मैला मिले हुए खाने में कुछ फर्क नहीं है। हां फ़र्क है तो इतना ही है, कि मैला मिले हुए खाने को हम आंख से देख सकते हैं और हवा में मिले हुए को नहीं देख सकते। पाख़ाने की बैठक, मोरी वग़ैरह, बिल्कुल साफ रखना चाहिए। अफसोस है कि ऐसा काम करने में हम शर्माते हैं, घृणा करते हैं, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो हमें वैसे पाखाने काम में लाने से घृणा होनी चाहिए। जो मैला हमारे शरीर से निकलता है उसे हम दूसरे मनुष्यों के द्वारा उठवाते हैं। ऐसा न कर हमे स्वयं न अपना मैला साफ़ करना चाहिए। ऐसा करना कुछ

बुरा नहीं है। यह बात स्वयं हमें सीख कर अपने बच्चों को सिखानी चाहिए। मोरी जब भर जावे तब मल को हाथ या आधे हाथ के गहरे गढ़े में गाड़कर ऊपर से खूब धूल पूर देना चाहिए। यदि हमे जंगल में पाख़ाना जाने की आदत हो तो मकानों से बहुत दूर अच्छी जगह में जाना चाहिए। वहां हाथ से एक छोटा सा गढ़ा खोदकर मल त्याग करना चाहिए और खोदी हुई मिट्टी उस पर पूर देना चाहिए। जहां तहां पेशाब करके भी हम हवा को ख़राब करते हैं। इस आदत को बिलकुल छोड़ देना चाहिए। जहां पर पेशाब-घर न हों, वहां पर घरों से दूर जाकर सूखी ज़मीन में पेशाब करना चाहिए और उस पर धूल डाल देना चाहिए। मल को ज्यादा गहराई में नहीं गाड़ने के दो प्रबल कारण हैं। एक तो यह कि मल गहराई में गाड़ने से उस पर सूर्य की गर्मी काम नहीं कर सकती; और दूसरे, उस के आस-पास के पानी के झरों को हानि पहुँचना सम्भव है।

बिना विचारे जहां तहां थूक देना भी अच्छा नहीं है। प्रायः थूक जहरीला होता है। क्षय के रोगी का थूक बहुत ही जहरीला होता है। उस के जन्तु उड़कर श्वास द्वारा दूसरों में प्रवेश कर जाते हैं और उन्हें नुक़सान पहुँचाते हैं। इसके सिवाय जहां तहां थूक देने से वे स्थान भी ख़राब होते हैं। इस विषय में हमारा कर्त्तव्य यह है कि हमें घरों के भीतर तो जहां तहा थूकना ही न चाहिए। एक पीकदानी रखनी चाहिए—चाहे वह मिट्टी की कुलिया ही क्यों न हो।

और यदि रास्ता चलते हुए थूकने की ज़रूरत आन पड़े तो ऐसी जगह थूकना चाहिए जहां पर सूखी ज़मीन में खूब धूल हो। ऐसा करने से थूक सूखी मिट्टी में मिल जायगा; और कम हानि पहुँचावेगा। कितने ही वैद्यों की तो सम्मति यह है कि क्षय के रोगियों को तो ऐसे बर्त्तनों में थूकना चाहिए जिनमें जन्तुनाशक दवा डाली गई हो; क्योंकि ऐसे बीमार के थूक के जन्तु सूखी ज़मीन को धूल में मर नहीं जाते। वह धूल उड़कर हवा में जाती है और उन जन्तुओं को फैलाती है। यह बात सही हो या न हो; परन्तु इस से हम इतना तो समझ सकते हैं कि जहां-तहां थूकने की आदत गन्दी और नुक़सान करनेवाली है।

सड़ा अनाज, तुस और शाक की पत्तियों को कुछ लोग योंही इधर उधर फेंक देते हैं। यदि उन्हें वे ज़मीन में कुछ गहराई पर गाड़ दें तो हवा ख़राब न हो और समय पाकर उपयोगी खाद तैयार हो जाय। सड़नेवाली कोई भी चीज़ खुली हवा में न फेंकना चाहिए। हर एक मनुष्य अपने अनुभव से समझ सकेगा कि इन बातों का जान लेना और अमल करना कितना आवश्यक है।

यह बात हम जान चुके हैं कि हमारी बुरी आदतों से हवा कैसे ख़राब होती है और हवा को ख़राब होने से कैसे बचाया जा सकता है। अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि हवा कैसे ग्रहण की जाय।

हम इसके पहले बता चुके हैं कि हवा ग्रहण करने का मार्ग

नाक है, मुँह नहीं। इतने पर भी बहुत ही कम ऐसे आदमी हैं जिन्हें श्वास लेना आता हो। बहुत से लोग मुँह से श्वास लेते हुए भी देखे जाते हैं। यह आदत नुकसान करती है। बहुत ठंडी हवा जो मुँह से ग्रहण की जाय तो प्रायः सरदी हो जाती है। स्वर बैठ जाता है। हवा के साथ धूल के कण सांस लेनेवालों के फेफड़ों में घुस जाते हैं और फेफड़ों को नुकसान पहुँचाते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव विलायत के शहरों में स्पष्ट देखा जाता है। वहां पर बहुत से कल-कारखानों के कारण नवम्बर मास में बहुत ही फौग—पीली धूमस—होती है। उसमें बारीक-बारीक काले धूल के कण होते हैं। जो मनुष्य इस धूल भरी हवा को मुँह से ग्रहण करते हैं, उनके थूक में धूल देख पड़ने लगती है। ऐसा अनर्थ न होने के लिए बहुत सी स्त्रियां—जिन्हें नाक से सांस लेने की आदत नहीं होती—चेहरे पर जाली बाँधे रहती हैं। यह जाली चलनी का काम देती है। इसमें होकर जो हवा जाती है वह साफ़ हो जाती है। इस जाली को उतार कर देखने से उस में धूल के कण दिखाई देते हैं। ऐसी ही चलनी परमात्मा ने हमारी नाक में रखी है। नाक से ग्रहण की हुई हवा गरम होकर भीतर जाती है। इस बात को ध्यान में रखकर प्रत्येक मनुष्य को नाक के द्वारा ही हवा लेना सीखना चाहिए। यह कुछ कठिन नहीं है। जिस समय हम बोल न रहे हों या किसी से बात-चीत न कर रहे हों, उस समय हमें मुँह बन्द कर रखना चाहिए। जिन्हें मुँह खुला रखने की

आदत पड़ गई हो उन्हें मुंह पर पट्टी बाँध कर रात में सोना चाहिए। इससे लाचार होकर उन्हें नाक से ही सांस लेनी पड़ेगी। प्रातःकाल खुली हवा में भी उन्हें २०–२२ बार लम्बी-गहरी सांसें नाक के द्वारा लेनी चाहिएं। तन्दुरुस्त और नाक से सांस लेनेवाला आदमी भी प्रातःकाल गहरी सांसें लेने का अभ्यास करेगा तो उसका सीना मज़बूत और चौड़ा होगा। यह बात सब के आज़माने के लायक़ है। इसे आज़माने वाले को चाहिए कि वह पहले अपने सीने को नाप ले और फिर इस क्रिया को एक महीने तक करते जाये। उसे जान पड़ेगा कि इतने थोड़े समय में भी उसका सीना कुछ बढ़ गया है। सैण्डो वग़ैरह डम्बल की जो कसरत करते हैं उसमें भी यही रहस्य है। झपाटे के साथ डम्बल फिराने से खूब गहरी सांस लेनी पड़ती है और इससे सीना खूब मज़बूत और चौड़ा होता है।

इस प्रकार हवा लेने की रीति जान लेने के बाद रात-दिन सांस द्वारा खुली हवा लेने की आदत डालना आवश्यक है। हम लोगों की यह साधारण आदत सी पड़ गई है कि दिन में तो हम घर में या दूकान में बैठे रहते हैं और रात में जब सोते हैं तब तिजोरी की भाँति बन्द कोठरी में सो जाते हैं और खिड़की-दरवाज़े हों तो उन्हें भी बन्द कर लेते हैं। यह बात बड़ी निन्दनीय है। जितने समय तक हो सके उतने समय तक—ख़ासकर सोते समय—खुली हवा ही में सोना चाहिए। हो सके तो खुले बरामदे, चाँदनी या मैदान में सोना

चाहिए। यदि ऐसा सुभीता न हो, तो जितने दरवाज़े और खिड़कियां खुली रक्खी जा सकें, खोल रखनी चाहिएं। हवा हमारी चौबीसों घन्टे खाने की ख़ुराक है। इससे भय खाने की कोई बात नहीं है। ऐसा वहम कभी न करना चाहिए कि खुली हवा से या प्रातःकाल की हवा से बीमारी पैदा हो जायगी। जिन्होंने बुरी आदतों से अपने फेफड़ों को बिगाड़ लिया है, उन्हें खुली हवा में सर्दी हो जाना सम्भव है। परन्तु ऐसे मनुष्यों को भी ऐसी सर्दी से नहीं डरना चाहिए। यह सर्दी थोड़े-से अर्से में दूर हो जायगी। क्षय के रोगियों के लिए योरप में अब जगह-जगह खुली हवा के मकान बनाये गये हैं। देश में जो महामारी का उपद्रव रहा करता है, इसका खास कारण हमारी हवा बिगाड़ने और बिगड़ी हुई हवा के ग्रहण करने की बुरी आदत है। इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए कि नाज़ुक से नाज़ुक मनुष्य को भी खुली हवा के ग्रहण करने से लाभ ही होगा। अगर हम हवा को ख़राब न होने दें, और साफ़ हवा का लेना सीख लें, तो बहुतसे रोगों से सहज ही बच जावें और हम पर गन्दे रहने का जो दोष लगाया जाता है, वह कई अंशों में दूर हो जाय।

जैसे खुली हवा में सोना ज़रूरी है, वैसे ही मुँह न ढक कर सोना भी आवश्यक है। बहुत से लोगों की ऐसी आदत होती है कि वे मुँह ढककर सोते हैं। ऐसा करने से हम अपनी निकाली हुई विषैली हवा को फिर ग्रहण करते हैं। हवा एक

ऐसी वस्तु है जो थोड़ा भी मार्ग पा जाने पर भीतर घुस जाती है। हमारा ओढ़ना कैसा ही लिपटा हुआ क्यों न हो, उसमें होकर थोड़ी-बहुत हवा घुस ही जाती है। यदि ऐसा न होता तो मुँह ढककर सोनेवाला घुटकर ही मर जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता, इसका कारण यही है कि थोड़ा-बहुत बाहर का प्राणवायु हमें मिल ही जाता है। परन्तु इतनी थोड़ी हवा पर्याप्त नहीं है। सिर को ठंढ लगती हो तो कुछ ओढ़ लेना चाहिए, टोपी पहन लेना चाहिए, परन्तु नाक तो इस दशा में भी खुली ही रखनी चाहिए। कितनी ही ठंढ क्यों न पड़ती हो, नाक को खुली रखकर ही सोना चाहिए।

२—उजेला

हवा और उजेले का इतना निकट-सम्बन्ध है कि उजेले के विषय में दो बातें इस परिच्छेद में लिखना आवश्यक जान पड़ता है। जैसे हम हवा के बिना नहीं रह सकते, वैसे ही उजेले के बिना भी जीते नहीं रह सकते। नरक में हवा ख़राब होती है, सो इस लिए कि वहाँ पर उजेले का अभाव है। जहाँ प्रकाश नहीं होता, वहां की हवा ख़राब होती है। यदि हम किसी अँधेरी कोठरी में घुसें तो वहां की हवा में हमें बदबू आवेगी। अँधेरे में हमें देख नहीं पड़ता, यही इस बात को प्रकट करता है कि उजेले में ही रहने के लिए हम पैदा हुए हैं। जितने अँधेरे की हमें आवश्यकता है, परमेश्वर ने उतने अँधेरे वाली सुखदायी रात हमारे लिए बना दी है।

कितने ही आदमियों की ऐसी आदत होती है कि वे अतिशय गर्मी के दिनों में अपने अँधेरे तहख़ानों में खिडकी-दरवाज़े बन्द कर के सो रहते हैं। याद रखना चाहिए कि हवा और उजेले में न रहने वाले मनुष्य निर्बल और तेजहीन हो जाते हैं।

योरप में इन दिनों ऐसे डाक्टर हैं जो बीमार को खुली हवा और प्रकाश के द्वारा आराम करते हैं। वे चेहरे पर ही हवा और प्रकाश नहीं पहुँचाते, सारे शरीर की त्वचा पर उसका प्रयोग करते हैं। बीमार को वे करीब-करीब नंगा रखते हैं। ऐसे इलाज से सैकड़ों बीमार अच्छे होते देखे जाते हैं। हमें अपने घरों के सब खिड़की-दरवाजे हवा और उजेले के आने-जाने के लिए खुले रखने चाहिएं।

इसे पढ़कर बहुत से लोग शंका करेंगे, कि हवा और उजेले की इतनी आवश्यकता होती तो उन मनुष्यों को नुकसान क्यों नहीं पहुँचता जो अपनी कोठरियों में पड़े रहते हैं? मालूम होता है कि ऐसी शंका करनेवालों ने इस बात पर विचार नहीं किया कि हमारा काम, जैसे-तैसे, जिन्दगी को बिताना ही नहीं है; किन्तु पूर्ण आरोग्य रहना है। यह बात अच्छी तरह सिद्ध की गई है कि जहां-जहां लोग कम हवा और कम उजेले में निर्वाह करते हैं, वहां-वहां पर लोग बीमार रहते हैं। गावों के लोगों से शहर के लोग नाज़ुक होते हैं, क्योंकि उन्हें हवा और उजेला कम मिलता है। डरबन में लोगों को खांसी आदि रोग बहुत होते हैं, इसका कारण सरकारी डाक्टर ने अपनी रिपोर्ट में यह लिखा है कि वहां अच्छी हवा नहीं

मिलती अथवा उसे लोग लेते ही नहीं हैं। हवा और उजेला आरोग्य के लिए ऐसा आवश्यक है, कि प्रत्येक मनुष्य को इनके विषय में अच्छी तरह जानकारी होनी चाहिए।

३—पानी

जिस भांति ऊपर की पंक्तियों में बताया गया है कि हवा हमारी खुराक है, उसी भांति पानी को खुराक समझना चाहिए। हवा पहले दर्जे की खुराक है; और पानी दूसरे दर्जे की। हवा के बिना आदमी कुछ मिनट ही जी सकता है, परन्तु पानी के बिना कई घंटे और देश-काल के अनुसार कई दिन भी रह सकता है। इतना होने पर भी, यह बात निश्चित है कि दूसरी खुराक के बिना तो मुद्दत तक रहा जा सकता है, पानी के बिना नहीं रहा जा सकता। पानी यदि बराबर मिलता रहे, तो मनुष्य कई दिन तक बिना अन्न के ही अपना निर्वाह कर सकता है। हमारे शरीर में सत्तर फी सदी से अधिक अंश जल का है। पानी के बिना शरीर का वज़न ८ पौंड से लेकर १२ पौंड तक गिना जाता है। हमारी सारी खुराकों में थोड़ा-बहुत पानी रहता ही है।

पानी हमारी बड़ी आवश्यक वस्तु है। परन्तु हम उसकी सँभाल बहुत कम करते हैं। महामारी, हैजा आदि रोग अशुद्ध हवा-पानी के ही कारण होते हैं। लड़ाई में लगी हुई सेनाओं में कभी-कभी काल-ज्वर फैल जाता है। इसका कारण भी दूषित पानी बताया गया है। फौज़ को जहाँ पर जैसा पानी

मिल जाता है, वही उसे पीना पड़ता है। प्रायः शहर के रहनेवालों को बुखार आ जाता है। इसका कारण भी अधिकतर पानी की खराबी होती है। खराब पानी पीने से बहुत बार पथरी की बीमारी होती देखी गई है।

पानी खराब होने के दो कारण हैं। एक तो ऐसी जगह पानी का होना कि जहाँ पर वह अच्छा न रह सकता हो; और दूसरा यह कि हम उसे स्वयं खराब कर दें। खराब जगह के पानी को तो पीना ही न चाहिए। और हम पीते भी नहीं; परन्तु अपनी असावधानी से खराब हुए पानी को पीते हुए हम नहीं हिचकिचाते। जैसे कि नदियों में हम चाहे जो वस्तु डाल देते हैं; उसी पानी को धोने तथा पीने के काम में लाते हैं। हमें चाहिए कि जहाँ पर हम नहाते-धोते हों, वहाँ का पानी पीने के काम में कभी न लावें। पीने के लिए नदी के बहाव की ओर से पानी लेना चाहिए, जहाँ पर कोई न नहाता हो। हर एक बस्ती में नदी के दो विभाग करने चाहिएं। नीचे की ओर का पानी नहाने-धोने के लिए, और ऊपर की ओर का पानी पीने के लिए रहे। पानी के आस-पास जब किसी सेना की छावनी पड़ती है, तब उसका एक सैनिक नदी के बहाव की देख-भाल करने के लिए उसके किनारे पर पड़ाव डाल देता है। उसके बहाव की ओर का हिस्सा कोई नहाने-धोने के लिए काम में लाता है तो उसे सज़ा दी जाती है। जहाँ पर ऐसा बन्दोबस्त नहीं होता, वहाँ की मेहनती स्त्रियां रेती में झरना खोद कर पानी भरती हैं। यह रिवाज बहुत अच्छा है। क्योंकि

ऐसा करने से पानी रेती आदि में छनकर मिलता है। कुएँ के पानी में कभी-कभी बडी जोखिम रहती है कच्चे—मट्टी के—कुएँ में जमीन के भीतर मल-मूत्र का रस मिलता रहता है। उसमें प्रायः मरे हुए पक्षी पड़े मिलते हैं। कभी-कभी पक्षी कच्चे कुओं में घोंसले वना लेते हैं। जो कुएँ पक्के बँधे नहीं होते, उनमें पानी भरनेवालों के पैरों का मैल इत्यादि धुलकर पानी बिगड़ जाता है। मतलब यह है कि कुएँ का पानी पीने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। टंकियों में भरा हुआ पानी वहुत करके खराब होता है। टंकी के पानी को ठीक रखने केलिए उसे बार-बार धोना चाहिए, और वह ढकी रहनी चाहिए। जहां से उसमें पानी की आमद हो, वह स्थान स्वच्छ रहना चाहिए। ऐसी स्वच्छता रखने की कोशिश बहुत कम आदमी करते हैं। पानी को ठीक रखने का सबसे सुन्दर नियम तो यह है कि हम पानी को आध घंटे तक खूब उबाल कर उसे ठंढा कर लें। और फिर विना हिलाये उसे दूसरे बर्तन में निकाल कर तीसरे बर्तन में रखें और कपड़े से छान कर काम में लावें। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इतना कर लेने से ही मनुष्य अपने कर्त्तव्य से मुक्त नहीं हो सकता। सार्वजनिक उपयोग के लिए जो जल है, वह मुहल्ले या शहर में रहनेवाले सारे मनुष्यों की सम्पत्ति है। अतएव इस सम्पत्ति का उपयोग उसे एक संरक्षक की भाँति करना चाहिए। अर्थात् उसे ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे पानी खराब हो। वह नदी या कुएं को खराब

नहीं कर सकता। पीने के पानी के हिस्से को नहाने-धोने के काम में नहीं ला सकता। पानी के पास मल-मूत्र का त्याग नहीं कर सकता। जल-स्थान के पास मुर्दे को नहीं जला सकता; और न उसकी ख़ाक वगैरह को पानी में डाल सकता है।

बहुत सँभाल रखने पर भी हमें बिल्कुल अच्छा पानी नहीं मिल पाता। उसमें क्षार आदि का भाग होता है। अक्सर उसमें सड़ी हुई वनस्पति के भाग पाये जाते हैं। बरसात का पानी सब से अच्छा समझा जाता है। परन्तु जब तक वह हमारे पास पहुँच पाता है उसके पहले ही उसमें हवा के भीतर के धूल के कण मिल जाते हैं। स्वच्छ जल का प्रभाव शरीर पर कुछ और ही तरह का होता है। इसलिए कितने ही अँगरेजी डाक्टर अपने मरीज़ों को 'डीस्टील्ड' अर्थात् शुद्ध किया हुआ पानी पीने को देते हैं। यह पानी, पानी की भाफ़ बनाकर, तैयार किया जाता है। जिसे कब्जियत वग़ैरह रहती हो, वह इस शुद्ध पानी का उपयोग करे तो उसे तुरन्त दस्त हो जाता है। ऐसा जल बहुत से बिलायती दवा बेचनेवाले बेचते रहते हैं। पानी और उसके उपचार पर हाल में एक ग्रन्थ लिखा गया है। लिखनेवाले का विश्वास है कि उसकी विधि के अनुसार शुद्ध किया हुआ पानी पीने से बहुत-से रोग मिट सकते हैं। यद्यपि इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति है, फिर भी यह असम्भव बात नहीं है। बिलकुल स्वच्छ पानी का असर शरीर पर खूब अच्छा पड़ता है।

सब लोग इस बात को नहीं जानते कि पानी हलका और भारी दो प्रकार का होता है। परन्तु यह जानना सब के लिए आवश्यक है। भारी पानी में साबुन को मलने से उससे झाग नहीं उठता। इसका अर्थ यह हुआ कि उस पानी में क्षार बहुत है। जैसे खारे पानी में साबुन का उपयोग नहीं होता, वैसे ही भारी पानी में भी नहीं होता। भारी पानी में अनाज कठिनता से पकता है। इसी प्रकार भारी पानी से अन्न पचने में भी कठिनाई होती है। भारी पानी स्वाद में खारा और हलका पानी मीठा या सर्वथा-स्वाद-रहित होता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि भारी पानी में पोषक तत्व होते हैं। अतएव उसके उपयोग से लाभ होता है। परन्तु वास्तव में देखा जाय, तो हलके पानी को काम में लाना अच्छा जान पड़ता है। बरसात का पानी स्वभाव से ही अच्छा होता है। यह हलका होता है। अतएव उसे काम में लाना लाभदायक है। इस बात को सभी मानते हैं कि भारी पानी के उबालने के बाद आध घंटे चूल्हे पर रहने देने से वह हलका हो जाता है। चूल्हे से उतारने के बाद उसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

कितनी ही बार यह सवाल उठता है कि पानी कब पीना चाहिए और कितना पीना चाहिए? इसका सीधा उत्तर यह है कि प्यास लगे तब पानी पीना चाहिए और जितना पानी पीने से प्यास बुझ जाय उतना पीना चाहिए। खाने के समय और खाने के बाद पानी पीने में कोई रुकावट नहीं है। परन्तु खाने के समय इतना स्मरण रखना चाहिए कि खुराक शीघ्र गले

विष को स्वयं दूर कर देते हैं। परन्तु यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अच्छी तलवार को काम में लाने के बाद यदि उसकी धार को ठीक न किया जाय तो उससे नुकसान ही होता है। यही बात रक्त के लिए भी है। रक्त के द्वारा अपने रक्षक सिपाही का काम लेकर यदि उसकी सँभाल न की जाय तो उसकी शक्ति कम हो जाती है और अन्त में नाश हो जाता है। इसमें कुछ अचम्भे की बात नहीं है। यदि हम सदा खराब पानी पियेंगे तो अन्त में रक्त अपना काम करना छोड़ देगा।

आठवाँ परिच्छेद

१—ब्रह्मचर्य के प्रयोग

यहाँ पर ब्रह्मचर्य के विषय में विचार करना है। एक-पत्नीव्रत ने तो विवाह के समय से ही मेरे हृदय में स्थान कर लिया था। पत्नी के प्रति मेरी वफादारी मेरे सत्यव्रत का एक अंग था। परन्तु स्व-पत्नी के साथ भी ब्रह्मचर्य्य का पालन करने की आवश्यकता मुझे दक्षिण अफ्रीका में ही स्पष्ट रूप से दिखाई दी। किस प्रसंग से अथवा किस पुस्तक के प्रभाव से यह विचार मेरे मन में पैदा हुआ, यह इस समय ठीक-ठीक याद नहीं पड़ता। पर इतना स्मरण होता है कि इसमें रायचन्द भाई का प्रभाव प्रधान-रूप से काम कर रहा था।

उनके साथ हुआ एक सम्वाद मुझे याद है। एक बार मैं मि० ग्लैडस्टन के प्रति मिसेज़ ग्लैडस्टन के प्रेम की स्तुति कर रहा था। मैंने पढ़ा था कि हाउस आफ़ कौमन्स की बैठक में भी मिसेज़ ग्लैडस्टन अपने पति को चाय बना कर पिलाती थीं। यह बात उस नियम-निष्ठ दम्पति के जीवन का एक नियम ही बन गया था। मैंने यह प्रसंग कवि जी को पढ़ सुनाया और उसके सिलसिले में दम्पति-प्रेम की स्तुति की। रायचन्द भाई बोले—इसमें आप को कौन सी बात महत्व की मालूम होती है—मिसेज़ ग्लैडस्टन का पत्नीपन या सेवा-भाव? यदि वे ग्लैडस्टन की बहन होतीं तो? अथवा उनकी वफ़ादार नौकर होतीं और फिर भी उसी प्रेम से चाय पिलातीं तो? ऐसी बहनों, ऐसी नौकरानियों के उदाहरण क्या आज हमें न मिलेंगे? और नारी जाति के बदले ऐसा प्रेम यदि नर जाति में देखा होता तो क्या आपको आनन्द और आश्चर्य न होता? इस बात पर विचार कीजिएगा।

रायचन्द भाई स्वयं विवाहित थे। उस समय तो उनकी यह बात मुझे कठोर मालूम हुई—ऐसा स्मरण होता है। परन्तु इन वचनों ने मुझे लोह-चुम्बक की तरह जकड़ लिया। पुरुष नौकर की ऐसी स्वामि-भक्ति की कीमत पत्नी की स्वामि-निष्ठा की कीमत से हजारगुना बढ़ कर है। पति-पत्नि में एकता का अतएव प्रेम का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्वामी और सेवक में ऐसा प्रेम पैदा करना पड़ता है। दिन-दिन कवि जी के वचन का बल मेरी नज़रों में बढ़ने लगा।

अब मन में यह विचार उठने लगा कि मुझे अपनी पत्नी के साथ कैसा सम्बन्ध रखना चाहिए ! पत्नी को विषय-भोग का वाहन बनाना उस के प्रति वफ़ादारी कैसे हो सकता है ? जब तक मैं विषय-वासना के अधीन रहूंगा तब तक मेरी वफ़ादारी की कीमत कृत्रिम मानी जायगी। मुझे यहां यह बात कह देनी चाहिए कि हमारे पारस्परिक सम्बन्ध में कभी पत्नी की तरफ़ से मुझ पर ज्यादती नहीं हुई। इस दृष्टि से मैं जिस दिन से चाहूं, ब्रह्मचर्य्य का पालन मेरे लिए सुलभ था। मेरी अशक्ति अथवा आसक्ति ही मुझे रोक रही थी।

जागरूक होने के बाद भी दो बार तो मैं असफल ही रहा। प्रयत्न करता; पर गिरता। प्रयत्न में मुख्य हेतु उच्च न था। सिर्फ़ सन्तानोत्पत्ति को रोकना ही प्रधान लक्ष्य था। सन्ततिनिग्रह के बाह्य उपकरणों के विषय में विलायत में मैंने थोड़ा बहुत पढ़ लिया था। उसका कुछ क्षणिक असर मुझ पर हुआ भी। परन्तु मि० हिल्स के द्वारा किए गये उनके विरोध का तथा अन्तर-साधन (संयम) के समर्थन का बहुत असर मेरे दिल पर हुआ और अनुभव के द्वारा वह चिरस्थायी हो गया। इस कारण प्रजोत्पत्ति की अनावश्यकता जँचते ही संयम-पालन के लिए उद्योग आरम्भ हुआ। संयम-पालन में कठिनाइयां बेहद थीं। चारपाइयां दूर रखते। रात को थककर सोने की कोशिश करने लगा। इन सारे प्रयत्नों का विशेष परिणाम उसी समय तो न दिखाई

दिया। पर जब मैं भूतकाल की ओर आंख उठाकर देखता हूं तो जान पड़ता है कि उन्हीं सारे प्रयत्नों ने मुझे अन्तिम बल प्रदान किया।

अन्तिम निश्चय तो ई० १९०६ ई० में ही कर सका। उस समय सत्याग्रह का श्रीगणेश नहीं हुआ था। उसका स्वप्न तक में मुझे ख़याल न था। बोअर-युद्ध के बाद नेटाल में 'ज़ुलू' बलवा हुआ। उस समय मैं जोहान्सबर्ग में वकालत करता था। पर मन ने कहा कि इस समय बलवे में मुझे अपनी सेवा नेटाल-सरकार को अर्पित करनी चाहिए। मैंने अर्पित की भी। वह स्वीकृत भी हुई। परन्तु इस सेवा के फल-स्वरूप मेरे मन में तीव्र विचार उत्पन्न हुए। अपने स्वभाव के अनुसार अपने साथियो से मैंने उसकी चर्चा की। मुझे जँचा कि सन्तानोत्पत्ति और सन्तान-रक्षण लोक-सेवा के विरोधक हैं। इस बलवे के काम में शरीक होने के लिए मुझे अपना जोहान्सबर्ग वाला घर तितर-बितर करना पड़ा। टीपटाप से सजाए हुए घर को और जुटाई हुई विविध सामग्री को अभी एक महीना भी न हुआ होगा कि मैंने उसे छोड़ दिया। पत्नी और बच्चों को फ़ीनिक्स मे रक्खा। और मैं घायलों की शुश्रुषा करनेवालों की टुकड़ी बनाकर चल निकला। इन कठिनाइयों का सामना करते हुए मैंने देखा कि यदि मुझे लोक-सेवा में ही लीन हो जाना है तो फिर पुत्रेषणा एवं धनेषणा को भी नमस्कार कर लेना चाहिए और वानप्रस्थधर्म का पालन करना चाहिए।

बलवे में मुझे डेढ़ महीने से ज़्यादा न ठहरना पड़ा।

परन्तु वह छै सप्ताह मेरे जीवन का अत्यन्त मूल्यवान समय था। व्रत का महत्व मैंने इस समय समझा। मैंने देखा कि व्रत, बन्धन नहीं, स्वतन्त्रता का द्वार है। आज तक मेरे प्रयत्नों में आवश्यक सफलता नहीं मिलती थी; क्योंकि मुझ में निश्चय का अभाव था। मुझे अपनी शक्ति का विश्वास न था। मुझे ईश्वर की कृपा का अविश्वास था और इसी लिए मेरा मन अनेक तरंगों में और अनेक विकारों के अधीन रहता था। मैंने देखा कि व्रत-बन्धन से पृथक रहकर मनुष्य मोह में पड़ता है। व्रत से अपने को बांधना मानो व्यभिचार से छूटकर एक पत्नी से सम्बन्ध रखना है। मेरा तो विश्वास प्रयत्न में है। व्रत के द्वारा मैं बँधना नहीं चाहता—यह वचन निर्बलता-सूचक है और उसमें छिपे-छिपे भोग की इच्छा रहती है। जो चीज़ त्याज्य है, उसे सर्वथा छोड़ देने में कौन-सी हानि हो सकती है? जो सांप मुझे डँसनेवाला है, उसको मैं निश्चयपूर्वक हटा देता हूं। हटाने का केवल उद्योग ही नहीं करता; क्योंकि मैं जानता हूं कि केवल प्रयत्न का परिणाम होनेवाला है मृत्यु। प्रयत्न में सांप की विकरालता के स्पष्ट ज्ञान का अभाव है। उसी प्रकार जिस चीज़ के त्याग का हम प्रयत्न मात्र करते हैं, उसके त्याग की आवश्यकता हमें स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दी है। यही सिद्ध होता है। मेरे विचार यदि बदल जांय तो? ऐसी शंका से बहुत बार हम व्रत लेते हुए डरते हैं। इस विचार में स्पष्ट दर्शन का अभाव है। इसी लिए निष्कुलानन्द ने कहा है कि "विरक्ति के बिना त्याग

टिक नहीं सकता"। जहाँ किसी चीज़ से पूर्ण वैराग्य हो गया है, वहाँ उसके लिए व्रत लेना अपने आप अनिवार्य हो जाता है।

२—ब्रह्मचर्य का व्रत

खूब चर्चा और दृढ़ विचार करने के बाद १९०६ में मैंने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया। व्रत लेने तक मैंने धर्म-पत्नी से इस विषय में सलाह न ली थी। व्रत के समय अलबत्ते ली। उसने उसका कुछ भी विरोध न किया।

यह व्रत लेते हुए मुझे बड़ा कठिन मालूम हुआ। मेरी शक्ति कम थी। विकारों को क्यों कर दबा सकूँगा? स्वपत्नी के साथ विकारों से अलिप्त रहना भी अजीब बात मालूम होती थी। फिर भी मैं देख रहा था कि यह मेरा स्पष्ट कर्तव्य है। मेरी नियत साफ़ थी। यह सोचकर कि ईश्वर शक्ति और सहायता देगा, मैं कूद पड़ा।

आज बीस साल बाद, उस व्रत को स्मरण करते हुए, मुझे सानन्द आश्चर्य होता है। संयम पालन करने का भाव तो १९०१ से ही प्रबल था। और उसका पालन कर भी रहा था। परन्तु जो स्वतंत्रता और आनन्द मैं अब पाने लगा, वह मुझे नहीं याद पड़ता कि १९०६ के पहले मिला हो। क्योंकि उस समय मैं वासनाबद्ध था—हर समय उसके अधीन हो जाने का भय था। अब वासना मुझ पर सवारी करने में असमर्थ हो गई।

फिर भी ब्रह्मचर्य की महिमा और अधिकाधिक समझने लगा। व्रत मैंने फिनिक्स में लिया था। घायलों की सुश्रूषा से छुट्टी पाकर मै फिनिक्स गया था। वहाँ से मुझे तुरन्त जोन्सबर्ग जाना था। मैं वहां गया और महीने के अन्दर ही सत्याग्रह-संग्राम की नीव पड़ी। मानो यह ब्रह्मचर्य-व्रत उसके लिए मुझे तैयार करने आया हो! सत्याग्रह की कल्पना मैंने पहले से ही नहीं कर रखी थी। उसकी उत्पत्ति तो अनायास—अनिच्छा से—हुई। पर मैंने देखा कि उसके पहले जो-जो काम किये थे, जैसे फिनिक्स जाना, जोन्सबर्ग का भारी घर-ख़र्च कम कर डालना और अन्त में ब्रह्मचर्य का व्रत लेना—ये सब मानो उसकी पेशबन्दी में थे।

ब्रह्मचर्य के सोलहों आने पालन का अर्थ है ब्रह्मदर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्रों के द्वारा न हुआ था। यह अर्थ मेरे सामने धीरे धीरे अनुभवसिद्ध होता गया। उससे सम्बन्ध रखने-वाले शास्त्र-वचन मैंने बाद में पढ़े। ब्रह्मचर्य में शरीर-रक्षण, बुद्धिरक्षण और आत्मा का रक्षण सब कुछ है। यह बात मैं व्रत के बाद दिनों दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। क्योंकि अब ब्रह्मचर्य को एक घोर तपश्चर्या रहने देने के बदले रसमय बनाना था, उसी के बल पर काम चलाना था। इसी लिए उसकी खूबियों के नित नये दर्शन होने लगे।

मैं इस तरह उससे रस की घूँटें पी रहा था। इससे कोई यह न समझे कि मैं उसकी कठिनता को अनुभव नहीं कर रहा था। आज यद्यपि मेरे छप्पन साल पूरे हो गये हैं,

फिर भी उसकी कठिनता का अनुभव तो होता ही है। यह अधिकाधिक समझता जाता हूँ कि यह असि-धारा-व्रत है। निरंतर जागरूकता की आवश्यकता देखता हूँ।

३–ब्रह्मचर्य और स्वादेन्द्रिय

ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए स्वादेन्द्रिय को वश में करना चाहिए। मैंने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें, तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यन्त सुगम हो जाता है। इस कारण, इसके बाद मेरे भोजन-प्रयोग, केवल अन्नाहार की दृष्टि से नहीं, पर ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे। प्रयोग-द्वारा मैंने अनुभव किया है कि भोजन कम, सादा, बिना मिर्च-मसाले का, और स्वाभाविक रूप में करना चाहिए। मैंने खुद छै साल तक प्रयोग करके देखा है कि ब्रह्मचारी का आहार बन-पके फल हैं। जिन दिनों मैं हरे या सूखे बन-पके फलों पर रहता था, उन दिनों जिस निर्विकारपन का अनुभव होता था, वह खुराक में परिवर्त्तन करने के बाद न हुआ। फलाहार के दिनों में ब्रह्मचर्य सहज था, दूधाहार के कारण कष्टसाध्य हो गया है। फलाहार छोड़कर दूधाहार क्यों ग्रहण करना पड़ा, इसका जिक्र करने की यहा आवश्यकता नहीं। यहाँ तो इतना ही कहना काफ़ी है कि ब्रह्मचारी के लिए दूध का आहार विघ्नकारक है। इसमें मुझे लेशमात्र सन्देह नहीं। इससे कोई यह अर्थ न निकाल ले कि हर ब्रह्मचारी के लिए दूध छोड़ना ज़रूरी है। आहार का असर ब्रह्मचर्य पर

क्यों और कितना पड़ता है, इस सम्बन्ध में अभी अनेक प्रयोगों की आवश्यकता है। दूध के सदृश शरीर के रगोरेशे को मज़बूत बनानेवाला और उतनी ही आसानी से हज़म हो जानेवाला फलाहार अब तक मुझे नहीं मिला है। न कोई वैद्य, हकीम या डाक्टर ऐसे फल या अन्न बता सके हैं। इस कारण दूध को विकारोत्पादक जानते हुए भी अभी मैं उसके त्याग की शिफारिस किसी से नहीं कर सकता।

४—ब्रह्मचर्य और उपवास

बाहरी उपचारों में जिस तरह आहार के प्रकार और परिमाण की मर्यादा आवश्यक है उसी प्रकार उपवास की बात समझनी चाहिए। इन्द्रियाँ ऐसी बलवान हैं कि चारो ओर से, ऊपर नीचे दशो दिशाओं से, जब उन पर घेरा डाला जाता है तभी वे कब्ज़े में रहती हैं। सब लोग इस बात को जानते हैं कि आहार के बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं। इसलिए इस बात में मुझे ज़रा भी शक नहीं है कि इन्द्रिय-दमन के हेतु से इच्छापूर्वक किये गये उपवासों से इन्द्रिय-दमन में बड़ी सहायता मिलती है। कितने लोग उपवास करते हुए भी सफल नहीं होते। वे यह मान लेते है कि केवल उपवास से ही सब काम हो जायगा। वे बाहरी उपवास मात्र करते हैं; पर मन में छप्पन भोगों का ध्यान लगाते रहते हैं। उपवास के दिनों में इन विचारों का स्वाद चक्खा करते हैं कि उपवास पूरा होने पर क्या-क्या खायँगे; और फिर शिकायत करते हैं

कि न स्वादेन्द्रिय का संयम हो पाया और न जननेन्द्रिय का। उपवास से वास्तविक लाभ वहीं होता है जहाँ मन भी देह-दमन में साथ देता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मन में विषय-भोग के प्रति वैराग्य हो जाना चाहिए। विषय का मूल तो मन में है। उपवास आदि साधनों से मिलने वाली सहायता बहुत होते हुए भी अपेक्षाकृत थोड़ी ही होती है। यह कहा जा सकता है कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयासक्त रहता है। परन्तु उपवास के बिना विषयासक्ति का समूल विनाश सम्भव ही नहीं। इसलिए उपवास ब्रह्मचर्य-पालन का अनिवार्य अंग है।

५—ब्रह्मचर्य और मनोविकार

ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले बहुतेरे विफल होते हैं। क्योंकि वे आहार-विहार तथा दृष्टि इत्यादि में अ-ब्रह्मचारी की तरह बर्ताव करते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं। यह कोशिश वैसी ही है जैसे कि गर्मी के मौसम में सर्दी के मौसम का अनुभव करने की कोशिश होती है। संयमी और स्वच्छन्द तथा भोगी और त्यागी के जीवन में भेद अवश्य होना चाहिए। साम्य तो सिर्फ़ ऊपर ही रहता है। भेद स्पष्ट रूप से दिखाई देना चाहिए। आँख से दोनों काम लेते हैं। परन्तु ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है, भोगी नाटक-सिनेमा में लीन रहता है। कान का उपयोग दोनों करते हैं, परन्तु एक ईश्वर-भजन सुनता है और दूसरा विलासमय गीतों को सुनने में आनन्द

मनाता है। जागरण दोनों करते हैं, परन्तु एक तो जागृत अवस्था में अपने हृदय-मन्दिर में विराजित राम की आराधना करता है, दूसरा नाच-रंग की धुन में सोने की याद भूल जाता है। भोजन दोनों करते हैं; परन्तु एक शरीर रूपी तीर्थक्षेत्र की रक्षा मात्र के लिए कोठे में अन्न डाल लेता है और दूसरा स्वाद के लिए देह में अनेक चीज़ों को भरकर उसे दुर्गन्धित बनाता है। इस प्रकार दोनों के आचार-विचार में भेद रहा ही करता है। और यह अवसर दिन-दिन बढ़ता है, घटता नहीं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन और काया से समस्त इन्द्रियों का संयम। इस संयम के लिए पूर्वोक्त त्यागों की आवश्यकता है। यह बात मुझे दिन-दिन दिखाई देने लगी और आज भी दिखाई देती है। त्याग के क्षेत्र की सीमा ही नहीं, जैसे कि ब्रह्मचर्य की महिमा की भी सीमा नहीं है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्न से साध्य नहीं होता। करोड़ों के लिए तो यह हमेशा एक आदर्श के रूप में ही रहेगा। क्योंकि प्रयत्न-शील ब्रह्मचारी तो नित्य अपनी त्रुटियों का दर्शन करेगा, अपने हृदय के कोने-कोने में छिपे विकारों को पहचान लेगा और उन्हें निकाल बाहर करने का सदा प्रयत्न करेगा। जब तक अपने विचारों पर इतना कब्ज़ा न हो जाय कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पावे, तब तक वह सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं। जितने भी विचार हैं वे सब एक तरह के विकार हैं। उनको वश में करने के माने हैं मन को वश में करना। और मन को वश में करना वायु को वश में करने

से भी कठिन है। इतना होते हुए भी यदि आत्मा कोई चीज़ है तो फिर यह भी साध्य होकर रहेगा। रास्ते में बड़ी कठिनइयाँ आती हैं, इससे यह न मान लेना चाहिए कि वह असाध्य है। वह तो परम अर्थ है। और परम अर्थ के लिए परम प्रयत्न की आवश्यकता हो तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है!

परन्तु देश आने पर मैंने देखा कि ऐसा ब्रह्मचर्य महज प्रयत्नसाध्य नहीं है। कह सकते हैं कि तब तक मैं मूर्छा में था, कि फलाहार से विकार समूल नष्ट हो जायँगे और इस लिए अभिमान से मानता था कि अब मुझे कुछ करना बाक़ी नहीं रहा है। अस्तु।

यहां इतना कह देना आवश्यक है कि ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए मैंने जिस ब्रह्मचर्य की व्याख्या की है उसका पालन जो करना चाहते हैं, वे यदि अपने प्रयत्न के साथ ही ईश्वर पर श्रद्धा रखनेवाले होंगे तो उन्हें निराश होने का कारण नहीं है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ *
गीता अ० २ श्लोक ५९

इसलिए आत्मार्थी का अन्तिम साधन तो रामनाम और राम-कृपा ही है। इस बात का अनुभव मैंने हिन्दुस्तान आने पर ही किया।

---

* निराहारी के विषय तो शान्त हो जाते हैं। परन्तु रसों का शमन नहीं होता। ईश्वर-दर्शन से रस भी शान्त हो जाते हैं।

नवां परिच्छेद

१—प्राकृतिक व्यायाम

मनुष्य को हवा, पानी और अन्न की जितनी जरूरत है, उतनी ही व्यायाम की भी है। हाँ, कसरत-बिना मनुष्य वर्षों तक जीवित रह सकता है और हवा, पानी तथा अन्न बिना नहीं। फिर भी यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि कसरत के बिना मनुष्य नीरोग नहीं रह सकता। हमने खुराक का जैसा अर्थ किया है, वैसा ही कसरत का भी करना चाहिए। कसरत का अर्थ, हाकी, टेनिस, फुटबाल, क्रिकेट और घूमना ही नहीं है। कसरत मात्र के माने हैं शारीरिक और मानसिक काम। जैसे खुराक हाड़ और मांस ही के लिए नहीं, मन के लिए भी आवश्यक है, वैसे ही कसरत शरीर ही के लिए नहीं, मन के लिए भी होनी चाहिए। शारीरिक कसरत न करने से शरीर रोगी रहता है, और मन की कसरत न होने से वह भी शिथिल रहता है। मूर्खता का एक तरह का रोग ही समझना चाहिए। कोई बड़ा पहलवान कुश्ती मारने में तो बड़ा प्रवीण हो; किन्तु मन उसका गँवारों का-सा हो तो उसके लिए नीरोग शब्द का प्रयोग करना भूल है। अँगरेजी कहावत है कि नीरोग वही मनुष्य है जिसके नीरोग शरीर में नीरोग मन का निवास है।

ऐसी कसरतें कौन-सी हैं? प्रकृति ने तो हमारे लिए ऐसा सुन्दर प्रबन्ध किया है कि हम सदा कसरत करते रह सकते हैं। शान्तिपूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि दुनिया का बहुत बड़ा भाग खेतो पर ही निर्वाह करता है। किसान के परिवार को खूब कसरत करनी पड़ती है। रोज़ आठ-दस घंटे अथवा इससे भी अधिक कार्य करने पर इन्हें खाने-पहनने भर को मिल सकता है। इन्हें मन के लिए अलग कसरत नहीं करनी पड़ती। किसान मूढ़ हो तो कोई काम ही न कर सके। उसे मिट्टी की पहचान, ऋतु-परिवर्त्तन का ज्ञान, चतुराई के साथ जोतना और साधारणतया चन्द्रमा, सूर्य और तारों की गति जाननी चाहिए। शहर का बड़ा भारी बुद्धिमान भी किसान के यहां जाकर निर्बुद्धि सिद्ध होगा। किसान ही यह बता सकेगा कि अमुक बीज कैसे बोया जाता है। उसे पास-पास के रास्तों का ज्ञान होता है, आस-पास के मनुष्यों को पहचानता है, तारे इत्यादि देख कर वह रात में भी दिशा को पहचान लेता है। पक्षियों के शब्द और उनकी गति से वह बहुत-सी बातें जान लेता है। विशेष प्रकार के पक्षियों को इकट्ठा होते और कल्लोल करते देखकर वह बता सकता है कि पक्षियों का अमुक काम अमुक बात का सूचक है। किसान अपने काम-भर की खगोल, भूगोल, और भूगर्भ विद्या समझता है। उसे अपने बाल बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ता है, इससे उसे मानव-धर्म-शास्त्र का साधारण ज्ञान होना सिद्ध होता है। पृथ्वी के विशाल भाग में रहने के कारण

वह ईश्वर का महत्व सहज में समझता है, शरीर से मज़बूत होता है, अपनी दवा स्वयं कर लेता है। उसकी मानसिक शिक्षा की बाबत जिक्र किया ही जा चुका है।

किन्तु सब लोग किसान नहीं बन सकते। और न यह परिच्छेद किसानों के लिए लिखा ही जाता है। यहां व्यापार अथवा ऐसे अन्य धंधे करने वालों का प्रश्न है कि वे क्या करें। हमने किसानों की जिन्दगी का कुछ वर्णन यहां इसलिए किया है जिसमें लोग इस प्रश्न का उत्तर आसानी से समझ सकें और अपना रहन-सहन उन्हीं के समान बना सकें। हमारा रहन-सहन किसान के रहन-सहन से जितना ही भिन्न होगा, हम उतना ही अधिक रोगी भी होंगे। किसान के जीवन-वृत्तान्त से पाठक समझ गए होंगे कि मनुष्य को आठ घंटे शारीरिक श्रम करना चाहिए। और वह ऐसा कि जिसमें मानसिक शक्तियों को भी काम करने का अवसर मिल सके। इसमें सन्देह नहीं कि व्यापारी आदि को कुछ मानसिक व्यायाम करने का अवसर मिलता है। परन्तु यह कसरत एकतरफ़ी होती है। ये लोग किसान के समान खगोल, भूगोल तथा इतिहास का ज्ञान नहीं रखते। इन्हें भाव-ताव की ख़बर रहती है, माल की खपत करना खूब जानते हैं। परन्तु इस काम में मानसिक शक्ति पर पूरा ज़ोर नहीं पड़ता। और न इस धंधे में शरीर को ही अधिक मेहनत पड़ती है।

ऐसे मनुष्य के लिए पाश्चात्य विद्वानों ने क्रिकेट इत्यादि के खेल लाभकारक बतलाये हैं। उनकी राय है कि वार्षिक

(*f*) The bill is payable to the Board's/Bank's Cashier at the counter. The Board shall not be responsible for any payment made to employee other than the Cashier at the counter.

(*g*) This bill is payable in cash but Money Orders and cheques will be received, subject to the condition below. This applies to all departments of the Provincial and the Central Government, who also shall pay bills in cash (including cheques and R. T. Rs.) and not by book transfers.

(*h*) If the bill is paid by M. O. the Account No. and the date of bill should be entered on coupon and the M. O. should reach the office of issue on or before the "due date otherwise the amount payable will be as shown against item "amount payable after due date.

(*i*) If the bill is paid by cheque the cheque should be drawn in favour of the Office of the K. S E. B. issuing the bill and shall reach the office at which payments is due not later than one day before the due date of this bill otherwise the amount payable will be as shown against item "Amount payable after due date". The receipt issued for cheques is subject to actual realisation.

उत्सवों पर भिन्न-भिन्न खेल खेलने चाहिएं। और मानसिक श्रम के लिये ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहिएं जिनमें बहुत ज्यादा सोचने-विचारने की जरूरत न पड़े। यह एक ओर की बात हुई। अब इसकी जांच होनी चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे खेलों से शरीर की कसरत हो जाती है; पर ऐसी कसरतों से मनुष्य का मन नहीं सुधरता। इसके अनेक उदाहरण हैं। क्रिकेट अथवा फुटबाल के अच्छे खिलाड़ियों की संख्या देखी जाय तो उनमें कितने अच्छी मानसिक शक्ति वाले मिलेंगे? हिन्दुस्तान के जो राजा-महाराजा अच्छे खिलाड़ी हैं, उनकी मानसिक शक्ति के सम्बन्ध में हमें क्या प्रमाण मिले? इसके विपरीत जो अच्छी मानसिक शक्ति वाले हैं, उनमें कितने खिलाड़ी हैं? मेरी समझ में, मानसिक शक्ति वाले लोगों में बहुत ही कम खेलनेवाले दिखाई पड़ेंगे। विलायत के गोरे आजकल खेलने से खूब काम लेते हैं। उनको उन्हीं के महाकवि किपलिंग ने बुद्धि-शत्रु की उपाधि दी है। और यह भी कहा है कि ये लोग इंगलैंड के शत्रु बनेंगे।

हमारे भारतीय बुद्धिमान गृहस्थों का मार्ग निराला ही है। ये मन की कसरत करते हैं। किन्तु शरीर की कसरत बिलकुल नहीं करते या कम करते हैं। इसी से इन्हें हम असमय खो बैठते हैं। इनका शरीर बराबर मानसिक काम करते रहने के कारण क्षीण हो जाता है। कोई न कोई रोग इनके शरीर में घर किये रहता है, और उनके पुष्ट विचारों से देश के लाभ उठाने का समय आते-आते ही वे संसार से चल

देते हैं। इससे मालूम होता है कि शारीरिक या केवल मानसिक व्यायाम काफ़ी नहीं है। न वही कसरत जो निरुपयोगी और सिर्फ़ खेलवाड़ के लिए हो। जिस कसरत से मन और शरीर दानों का सुधार साथ-साथ और हरदम होता रहे, वही कसरत अच्छी है। उसी से मनुष्य नीरोग रह सकता है। किसानी में ये दोनों गुण हैं।

जो किसान नहीं हैं, वे क्या करें ? क्रिकेट इत्यादि खेलों से होनेवाली कसरत ठीक नहीं। इसलिए हमें ऐसी कसरत तलाश करनी चाहिए जिससे किसान का-सा कुछ काम हो। व्यापारी तथा अन्यान्य लोग अपने घर के आस-पास फुलवारी लगा सकते हैं; और उसमें नित्य दो-चार घंटे खोदने का काम कर सकते हैं। फेरीवालों की तो अपने धंधे में ही कसरत हो जाती है। यह प्रश्न तो बेफायदा होगा कि हम दूसरे के घर में रहते हों तो उसकी ज़मीन में कैसे काम करें ? यह मन की संकीर्णता है। ज़मीन चाहे जिसकी हो, हमें खोदने और बोने से मिलनेवाले फ़ायदे तो मिलेंगे ही। इसके सिवा हमारा घर सुधरा रहेगा। साथ ही हमें संतोष भी होगा कि हमने दूसरे की जमीन ठीक कर रखी है। जिन्हें जमीन-सम्बन्धी कसरत करने का मौक़ा न मिल सके अथवा जिन्हें वह नापसन्द हो, उनके लिए भी दो बातें लिख देना ज़रूरी है। जमीन का काम करने की कसरत के बाद सर्वोत्तम कसरत चलना है। इसे कसरतों की रानी कहते हैं। और यह बहुत ठीक है। हमारे साधु-सन्त बहुत तन्दुरुस्त रहते हैं, इसके

अनेक कारणों में से एक यह भी है कि ये लोग घोड़ा, गाड़ी आदि का उपयोग नहीं करते। अपनी सारी मुसाफिरी पैदल ही करते है। थेरो नामक एक बड़े विद्वान् अमेरिकन ने चलने की कसरत के सम्बन्ध में एक बहुत ही विचारपूर्ण पुस्तक लिखी है। उसने दिखाया है कि जो लोग समय न मिलने का बहाना करके घर से बाहर नहीं निकलते, हिलते-डुलते नहीं, और सदा लिखने आदि का काम करते रहते हैं, उन मनुष्यों के लिखे लेख आदि भी वैसे ही रोगी—शिथिल होते हैं जैसे वे खुद होते हैं। अपने अनुभव के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि मैं जिस समय अधिक-से-अधिक चलता था, मेरे उत्तम से उत्तम ग्रन्थ उसी समय के लिखे हुए हैं। उसके लिए रोज़ चार-पाँच घंटे चलना कुछ बात न थी। जिस प्रकार सच्ची भूक लगने पर हम कोई काम नहीं कर सकते, पेट-पूजा में ही व्यस्त हो जाते हैं, उसी प्रकार हमें कसरत की ऐसी पक्की आदत डाल लेनी चाहिए कि उसके बिना किये हम और काम ही न कर सकें। अपने मानसिक कामों का नापना हमें पसन्द नहीं। इससे हम यह नहीं देख सकते कि शरीरिक कसरत के बिना किये हुए मानसिक काम नीरस और निकम्मे होते हैं। चलने से शरीर के प्रत्येक भाग में खून तेज़ी से दौरा करता है, प्रत्येक अंग में हलचल पैदा होती है और सारा शरीर कस उठता है। चलने से हाथ-पैर तो हिलते ही हैं, साथ ही बाहर की शुद्ध हवा मिलती है। बाहर के सुन्दर दृश्यों का आनन्द भी प्राप्त होता है। सदा

एक ही जगह और गलियों में न चलना चाहिये। खेतों और जंगलों में घूमना आवश्यक है। वहाँ प्राकृतिक शोभा की कुछ परख होगी। दो-एक मील का चलना कोई चलना नहीं कहलाता। दस-बारह मील का चलना, चलना है। जो लोग हर रोज ऐसा न कर सकें वे प्रति रविवार को खूब चल सकते हैं। कोई बीमार एक अनुभवी वैद्य के यहां दवा लेने गया। अजीर्ण का रोगी था। वैद्य ने उसे रोज़ थोड़ा चलने की सलाह दी। बीमार ने कहा, मुझमें ज़रा भी चलने की ताक़त नहीं है। वैद्य ने समझ लिया कि बीमार कम हिम्मत है। वह उसे अपनी गाड़ी पर चढ़ाकर घूमने ले गया। रास्ते में उसने जानबूझकर अपना चाबुक गिरा दिया। सभ्यता की रक्षा के विचार से रोगी चाबुक उठाने के लिए उतर पड़ा। इधर वैद्य ने गाड़ी हांक दी। बेचारे रोगी को हांफते हुए दूर तक गाड़ी के पीछे जाना पड़ा। तब वैद्य ने गाड़ी घुमाई और उसे चढ़ाकर कहा कि तुम्हारे लिए चलना दवा थी। इसी से तुम्हें चलाने के लिए मुझे यह निर्दय व्यवहार करना पड़ा। बीमार को खूब कड़ाके की भूख लगी थी। इससे वह चाबुक की बात भूल गया। उसने वैद्य का उपकार माना और घर जाकर संतोषपूर्वक भोजन किया। जिन्हें बदहज़मी और उससे उत्पन्न होनेवाली बीमारियां हों वे चलने का प्रयोग आज़मा देखें।

दसवाँ परिच्छेद

स्वास्थ्य और पोशाक

आरोग्य जैसे आहार पर निर्भर है वैसे ही, किसी हद तक, पोशाक पर भी। गोरी लेडियाँ शौक के लिए ऐसी पोशाक पहनती हैं कि जिससे उनके पैर और कमर तंग रहें। इससे उन्हें कई प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। चीन में औरतों के पैर इतने छोटे कर दिये जाते हैं कि हमारे बच्चों के पैर भी उनके पैरों से बड़े होते हैं। इससे चीन की औरतों के स्वास्थ्य को बड़ा धक्का पहुँचता है। इन दो उदाहरणों से पढ़नेवाले समझ सकते हैं कि कुछ अंश में हमारे स्वास्थ्य का आधार पोशाक पर भी है। बहुत अंशों में पोशाक को पसन्द करना हमारे हाथ में नहीं रहता। हम अपने बड़े-बूढ़ों की पोशाक पहनते हैं। और वर्त्तमान काल में ऐसा करने की ज़रूरत भी है। पोशाक का मुख्य उद्देश्य क्या है, उसे भूल कर अब पोशाक से हमारा धर्म, हमारा देश और हमारी जाति आदि जाने जाते हैं। मज़दूर, मास्टर, कारबारी आदि की पोशाक भी जुदी ही जाति की होती है। ऐसी स्थिति में आरोग्य की दृष्टि से पोशाक का विचार करना बहुत ही कठिन काम है। फिर भी विचार करने से कुछ लाभ ही होगा।

पोशाक शब्द में जूते और जेवर इत्यादि शामिल समझने चाहिएं। पोशाक का मुख्य उद्देश्य क्या है? मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्थिति में कपड़ा नहीं पहनता था। स्त्री पुरुष केवल अपना गुप्त भाग ढक लेते और बाक़ी शरीर का सब भाग खुला रखते थे। इससे उनका चमड़ा कठिन और मज़बूत हो जाता था। ऐसे मनुष्य हवा और पानी को खूब सह सकते हैं। उन्हें यकायक सर्दी इत्यादि नहीं होती। हवा के प्रकरण में विचार कर चुके हैं कि हम केवल नथुनों से ही हवा नहीं लेते हैं; बल्कि चमड़े के अनेक छेदों द्वारा भी हवा लेते हैं। कपड़े पहनकर हम इस चमड़े के बड़े काम को रोकते हैं। ठन्डे देश के मनुष्य ज्यों-ज्यों आलसी बनते गये त्यों-त्यों उन्हें शरीर ढकने की जरूरत हुई। वे ठन्ड न सह सके और पोशाक का रिवाज चल पड़ा। अन्त में लोगों ने पोशाक को मनुष्य का आभूषण मान लिया। फिर उससे देश, जाति आदि की पहचान होने लगी।

असल में प्रकृति ने मनुष्य के शरीर पर चमड़े की बहुत ही योग्य पोशाक दी है। यह मानना कि शरीर नग्न दशा में बुरा मालूम होता है, बिल्कुल भ्रम है। अच्छे-अच्छे से चित्र तो नग्न दशा में दिखाई पड़ते हैं। पोशाक से शरीर के साधारण अंगों को ढककर मानों हम दिखाते हैं कि उनके दोष छिपाने के लिए हम यह कर रहे हैं। मानों हम प्रकृति के कामों में दोष निकाल रहे हैं। हमारे पास ज्यों-ज्यों पैसा अधिक होता है त्यों-त्यों हम अपनी टीमटाम बढ़ाते जाते हैं।

हर तरह से आदमी अपनी सुन्दरता बढ़ाना चाहता है। शीशे में मुँह देख-देख अकड़ता है—वाह! मैं कैसा खूबसूरत हूँ। यदि ऐसी आदतों से हम सब की दृष्टि में फ़र्क न पड़ा हो तो हम तुरन्त समझ सकते हैं कि मनुष्य का अच्छे-से-अच्छा रूप उसकी नग्न दशा में दिखाई देता है; और उसी में उसका आरोग्य भी है। एक पोशाक पहनी कि रूप में इतना ही फ़र्क डाला। शायद केवल कपड़ों से संतोष न होने पर स्त्री-पुरुषों ने गहने पहनने शुरू कर दिये। बहुतेरे मर्द भी पैर में कड़े पहनते हैं, कानो में बालियां लटकाते हैं और हाथ में अँगूठी पहनते हैं। ये सब गन्दगी के घर हैं। यह समझना बहुत ही कठिन है कि इनके पहनने में कौन-सी शोभा फटी पड़ती है। इस विषय में औरतों ने तो हद ही कर दी है। ये पैरों में ऐसे भारी-भारी कड़े, पाजेब, पहनती हैं कि पैर उठाना भी कठिन हो जाता है। बालियों से कान गुथे रहते हैं। नाक में भारी नथ लटका करती है और हाथों में तो जितने गहने हों उतने ही थोड़े! इस पहनाव से शरीर पर बड़ा मैल जमा हो जाता है। कान और नाक में तो मैल की हद ही नहीं रहती। हम इस मैली दशा को शृङ्गार समझकर खूब पैसे फूंकते हैं। चोरों के भय से जान जोखिम में डालते हुए नहीं डरते। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि अभिमान से पैदा हुई मूर्खता को हम तकलीफें झेलते हुए जो नज़राना देते हैं वह बहुत ही अधिक होता है। ऐसे उदाहरण बहुत लोगों ने अपनी आंखों देखे होंगे कि कान में फोड़ा होने पर भी औरतों ने अपनी

बालियां नहीं उतारने दीं। हाथ में फोड़ा होकर हाथ पक गया, फिर भी पहुँची न उतरी। अँगुली पककर सूज आयी तब भी मर्द और औरतें हीरा-जड़ी अंगूठी अपनी अँगुली से उतार डालना रूप में फर्क आ जाने का कारण समझती हैं।

पोशाक के सम्बन्ध में अधिक सुधार मुश्किल है। फिर भी हम गहनों और अनावश्यक कपड़ों को एकदम बिदा कर सकते हैं। रीति-रवाज के लिए कुछ कपड़ों को रखकर बाक़ी को अलग कर सकते हैं। पोशाक मनुष्य का आभूषण है, यह बहम जिन लोगों के मन से दूर हो गया है वे बहुत कुछ सुधार करके अपना आरोग्य ठीक रख सकते हैं।

आजकल यह हवा बह रही है कि योरप की पोशाक हमारे लिए बहुत अच्छी है, इस पोशाक से हमारा रोब बढ़ जाता है और लोग हमारा सम्मान करने लगते हैं। इन सब बातों पर विचार करने का यह स्थल नहीं। यहां तो इतना ही कहना आवश्यक है कि योरप की पोशाक वहां के ठन्डे भागों के लिए भले ही योग्य हो, किन्तु वह भारतवर्ष के लिए उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकती। हिन्दुस्तान के लिए, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, हिन्दुस्तान की ही पोशाक समुचित हो सकती है। हमारे कपड़े खुले और ढीले-ढाले होते हैं। इसलिए उनमें हवा आ जाती है। यह नहीं, अधिकतर सुफेद होते हैं। जिससे सूर्य की किरणें बिखर जाती हैं। काले रंग के कपड़े में सूर्य की गर्मी अधिक मालूम होती है। इसका कारण यह है कि इसमें लगकर किरणें बिखरती नहीं।

हम अपना सिर प्रायः ढके रहते हैं और बाहर जाते समय तो अवश्य ही ढक लिया करते हैं। पगड़ी तो हमारी पहचान हो गई है। फिर भी, जहां तक सुभीता हो, सिर खुला रखने में ही फायदा है। बाल बढ़ाना और पटिया पाड़ना जंगलीपन की निशानी है। बढ़े हुए बालों में धूल, मैल और जूएँ पड़ जाते हैं। कहीं सिर में फोड़ा हुआ तो उसका इलाज करना भी कठिन हो जाता है। सिर पर साहब लोगों के से बाल बढ़ाना पगड़ी बांधनेवालों के लिए बेवकूफ़ी है।

पैरों के द्वारा भी हम बहुतेरे रोगों के पंजे में फँस जाते हैं। बूट इत्यादि पहिननेवालों के पैर नाज़ुक हो जाते हैं। उनसे पसीना निकलने लगता है और वह बहुत ही बदबू करता है। जिस मनुष्य को बास की परख है वह मोज़े और बूट पहिनने वाले मनुष्य के पास बदबू के मारे उस समय खड़ा नहीं रह सकता जब वह अपने मोजे और बूट उतार रहा हो। हम जूतों को पादत्राण या कंटकारि कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हमें जब कांटों में, ठंढक मे, अथवा धूप में चलना पड़े तभी जूते पहनने चाहिए और सो भी इस प्रकार के जिनसे केवल तलुवे ढकें। सारा पैर न ढक जाय। इस अभिप्राय को सेंडल (खड़ाऊँदार) जूते भली भांति पूरा कर सकते हैं। जिनका सिर दुखता हो, जिनका शरीर कमज़ोर हो, जिनके पैरों में दर्द होता हो और जिन्हें जूते पहनने की आदत है, उनके लिए तो हमारी यही सलाह है कि वे नंगे पैर चलने का प्रयोग कर देखें। इससे उन्हें तुरन्त मालूम होगा कि पैर खुले रखने,

ज़मीन पर नंगे पैर चलने और उन्हें पसीना-रहित रखने से हम तत्काल कितना लाभ उठा सकते हैं।

ग्यारहवां परिच्छेद

रोग और चिकित्सा

१—हवा के द्वारा

यदि लोग आरोग्य प्राप्ति के सब नियमों का सदा पालन करें और आरोग्य सुरक्षित रखने के लिए अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते रहें तो आगे के प्रकरणों की ज़रूरत ही न हो, क्योंकि ऐसे लोगों को शारीरिक और मानसिक व्याधियां सता ही नहीं सकतीं। पर ऐसे स्त्री-पुरुष हमें मिलते कहाँ हैं। बिरले ही स्त्री-पुरुष ऐसे होंगे जिन्हें कभी किसी प्रकार की व्याधि न हुई हो। साधारण मनुष्य तो सदा व्याधियों से पीड़ित रहते हैं। ऐसे मनुष्य प्रथम भाग में बताए नियमों का जितना अधिक पालन करेंगे उतने ही अधिक नीरोग रहेंगे। पर इस विचार से कि रोग उत्पन्न होने की दशा में ऐसे मनुष्य घबड़ाकर डाक्टर और वैद्यों के पास दौड़ते न फिरें, बल्कि खुद ही व्याधि दूर करने का उपाय कर सकें, आगे के प्रकरण लिखे जाते हैं।

हम दिखा चुके हैं कि आरोग्य-रक्षा के लिए पहली आवश्यक वस्तु हवा है। उसी प्रकार हवा रोगों के नाश करने के लिए भी बहुत मूल्यवान हैं। उदाहरणार्थ ऐसे मनुष्य को लीजिए जिसे गठिया होगई हो। उसे गरम हवा की भाप दी जाय तो पसीना आ जायगा; और जोड़ खुल जायँगे। इस प्रकार भाप देने को 'टर्किश बाथ' कहते हैं।

जिस मनुष्य का शरीर बुखार से आग के समान जल रहा हो उसे यदि बिलकुल नंगा करके हवा में सुला दिया जाय तो उसकी गरमी का माप एकदम कम हो जायगा। उसकी बेचैनी जाती रहेगी। शरीर ठंडा हो, उसे ओढ़ा दिया जाय तो पसीना निकलेगा और बुख़ार उतर जायगा। पर हम लोग बुख़ार चढ़ने पर—चाहे बीमार गरमी से घबड़ा ही क्यों न रहा हो—कमरे की खिड़कियां और दरवाज़े बन्द कर रखते हैं, उसका सिर और नाक खुले नहीं रहने देते, उसे खूब ओढ़ा लपेटकर रखते हैं। यह निरा बहम है। इससे बीमार घबराता है और कमजोर हो जाता है। यदि गरमी से बुखार आया हो तो ऊपर बताए हवा के उपचार से नहीं डरना चाहिए। इसका फायदा तुरन्त जान पड़ेगा। इससे नुकसान जरा भी नहीं होगा। हाँ, इस बात की सँभाल रखनी चाहिए कि बीमार स्वयं खुला रहकर काँपने न लगे। यदि बीमार को सरदी मालूम हो तो समझ लेना चाहिए कि उसे ज़्यादा घबराहट नहीं है। बीमार नग्न दशा में बाहर न रह सके तो भी उसे ओढ़ाकर बाहर खुली हवा में रखनें सें कभी नुकसान नहीं है।

जीर्ण-ज्वर (पुराने बुख़ार) अथवा दूसरी बीमारियों के लिए वायु-परिवर्त्तन (हवा बदलना) एक अकसीर दवा है। हवा बदलने का रिवाज उपचार का ही अङ्ग है। कभी-कभी लोग घर भी बदल देते हैं। जिस घर से बीमारी कभी दूर नहीं होती उसमें भूत-प्रेतपन हवा की ख़राबी में ही रहा करता है। घर बदलने से हवा बदल जाती है। यही फायदा है। हमारे शरीर के साथ हवा का ऐसा घना सम्बन्ध है कि उसका जरा भी फेर-फार हमारे ऊपर अच्छा अथवा बुरा परिणाम डाले बिना नहीं रहता। पैसेवाले हवा बदलने के लिए बाहर दूर जा सकते हैं। ग़रीब लोग पास के गाँव में जाकर, और मजबूरी की हालत में दूसरे घर में जाकर भी, फायदा उठा सकते हैं। बीमार को एक से दूसरी कोठरी में ले जाने से भी कुछ फ़ायदा होता है। घर, कोठरी और गांव आदि के बदलने में हमको इस बात का ज़रूर खयाल रखना चाहिए कि जहां जाना हो वहां की हवा बहुत ही बढ़िया हो। नम (सर्द) हवा में उत्पन्न हुई बीमारी अधिक नम हवा-वाले स्थान में जाने से दूर नहीं होगी। कभी-कभी हवा तबदील करने का फल अच्छा नहीं होता। इसका कारण यह होता है कि बिना समझे हवा तबदील की जाती है। कितनी ही बार अच्छी हवा में जाने पर भी लाभ नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि अन्य प्रकार की आवश्यक साव-धानी नहीं रखी जाती।

पिछले भाग के हवा के प्रकरण के साथ इसे मिलाकर पढ़ने से पाठकों को समझने में बहुत आसानी होगी। उसमें हवा

का आरोग्य के साथ सम्बन्ध बतलाया गया है और हवा के विषय में सामान्य विचार किया गया है। यहाँ हवा का विचार सिर्फ़ उपचार की भाँति किया गया है।

२—जल के इलाज

हवा का काम अदृश्य रूप से होता है, इसलिए हम हवा के उपचारों की खूबी भली भांति नहीं परख सकते। परन्तु पानी का प्रभाव और काम हम देख सकते हैं। इससे उसकी खूबियां तुरन्त जानी जा सकती हैं।

सभी लोग थोड़ी-बहुत भाप की जलचिकित्सा जानते हैं। बुख़ार में बीमार को भाप देते हैं, सिर में दर्द अधिक होने पर प्रायः भाप से दूर किया जाता है। संधिवात (गठिया) से जोड़ों के जकड़ जाने पर बीमार को शीघ्र लाभ होता है। शरीर पर ज़्यादा फोड़े-फुन्सी होने पर मरहम पट्टी से काम नहीं चलता; पर भाप देने से वे एकदम नरम पड़ जाते हैं।

बहुत थका हुआ मनुष्य अगर भाप ले, गरम पानी से नहाकर तत्काल ठंडे पानी के नहा ले, तो शरीर हलका हो जायगा। थकावट उतर जायगी। जिसे नींद न आती हो वह भाप लेकर ठंडे पानी में नहाये और खुली हवा में लेटे तो तुरन्त नींद आ सकती है।

जहाँ भाप काम में लाने को कहा गया है, वहाँ गरम पानी काम में ला सकते हैं। भाप और गरम पानी में भेद न समझना चाहिए। अगर पेट में सख़्त दर्द होता हो तो गरम पानी से

सेंकने से तुरन्त आराम होगा। उबलते हुए पानी को बोतल या हांडी में भरकर और पेट पर मोटा कपड़ा रखकर उसके द्वारा सेंकने का काम कर सकते हैं। कभी-कभी कै (उल्टी) कराने की जरूरत पड़ती है। अधिक गरम पानी से कै हो सकती है। जिन्हें कब्ज़ रहता हो वे यदि सोते समय या सवेरे दतूवन के बाद गरम पानी पीवें, तो दस्त आने की बहुत सम्भावना रहती है। सर गार्डन स्प्रिंग—जो किसी समय केप टाउन के प्रधान थे—बड़े तन्दुरुस्त थे। किसी ने पूँछा, इसका मुख्य कारण क्या है? बोले, "मैं सोते समय तथा सवेरे उठकर, हर रोज़ एक गिलास गरम पानी पीता हूं। इसी से मेरी तन्दुरुस्ती ऐसी अच्छी रहती है।" कितने ही मनुष्यों को चाय पीने के बाद दस्त उतरता है। वे ग़लती से समझते हैं कि यह चाय पीने का परिणाम है। पर अच्छी तरह विचारने से जान पड़ेगा कि चाय तो उल्टा नुकसान करती है—लाभ का कारण उसमें गरम पानी ही है।

भाप लेने के लिए एक विशेष प्रकार के चौकठे भी आते हैं। परन्तु उनकी कोई विशेष ज़रूरत नहीं होती। बेत की कुरसी के नीचे स्पिरिट वा मिट्टी के तेल का चूल्हा या जलती लकड़ी या कोयले की छोटी-सी अँगेठी रखी जाय। अँगेठी पर एक छोटी-सी पतीली पानी भर मुँह ढककर रख दें। कुरसी पर एक गुदड़ी या कम्बल इस प्रकार डाल दें कि वह आगे की तरफ़ लटकती रहे, जिस से बीमार को अँगेठी या भाप की आंच न लगे। अब बीमार को कुरसी पर बिठाकर उसके चारों

तरफ़ कम्बल या चादर लपेट दें। फिर पतोली पर से ढक्कन हटा दें। अब बीमार को भाप लगनी शुरू होगी। हम लोगों में बीमार का सिर ढकने की रीति है। परन्तु वैसा करने की ज़रूरत नहीं। शरीर में जो गरमी पैदा होती है वह मस्तक तक चढ़ती है और उससे मुँह पर पसीना आ जाता है। अगर बीमार उठ बैठ न सकता हो तो उसे रस्सी के पलंग या लोहे की चारपाई पर लेटाकर भाप दी जा सकती है। इस में कम्बल को इस तरह रखें कि गरमी और भाप बाहर न निकल जाय। भाप देते हुए इस ओर विशेष ध्यान रखें कि बीमार जल न जाय—कहीं उसके कम्बल इत्यादि में आग न लग जाय। बीमार की हालत बहुत ही नाजुक हो तो बहुत सोच समझकर भाप दें, भाप देने में जैसे लाभ हैं वैसे ही हानियाँ भी हैं। भाप लेने के बाद मनुष्य कमज़ोर ज़रूर पड़ जाता है। पर यह कमज़ोरी बहुत दिनों तक नहीं रहती। हां, अगर रोज़ाना भाप लेने की आदत पड़ गई हो तो आदमी ज़रूर कमज़ोर हो जाता है। इस लिए भाप का उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। शरीर के किसी भी भाग को भाप दी जा सकती है। किसी मनुष्य का सिर दुखता हो तो सारे शरीर को भाप न दें। छोटे मुँहवाली पतोली या हांड़ी में पानी उबालकर उस पर केवल माथा रखें, सिर के ऊपरी भाग को कपड़े से ढांककर नाक द्वारा भाप लें। भाप नाक के छेदों से सिर में चढ़ जायगी। नाक बन्द हो गई हो तो भाप लेने से खुल जायगी। किसी विशेष अंग पर सूजन आ जाय तो उसके दूर

करने के लिए उतने ही अंग को भाप देनी चाहिए।

गरम पानी और भाप का फ़ायदा साधारणतः सब लोग समझते हैं। पर ठंडे पानी के लाभ समझनेवाले बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। यह निर्विवाद है कि ठंडे पानी का सा असर गरम पानी में नहीं है। ठंडे पानी में ताक़त देने का गुण अधिक होता है। कमज़ोर-से-कमज़ोर आदमी को भी ठंडे पानी का उपचार किया जा सकता है। तापज्वर, शीतला की बीमारी और चर्म-रोगों में ठंडे पानी में भिगोई हुई चादर लपेटने का इलाज अक्सीर है। इसका असर बहुत विचित्र होता है। हर आदमी बेखटके इसकी आज़माइश कर सकता है। मनुष्य को यदि उन्माद हो गया हो, सन्निपात ने धर लिया हो, तो बर्फ़ के पानी में भिगोया हुआ कपड़ा सिर पर रखने से शान्ति मिलेगी। जिसे दस्त न होता हो, वह बर्फ़ के पानी में भींगा हुआ कपड़ा अपने पेट पर रक्खे तो सम्भवतः दस्त आ जायगा। वीर्यपात हो जाता हो तो पेड़ू पर ठंडे पानी में भिगोया हुआ कपड़ा बाँधकर सोने से अवश्य लाभ पहुँचेगा। किसी जगह खून बह रहा हो तो बर्फ़ के पानी में भींगी पट्टी बाँधने से खून बन्द हो जायगा। नकसीर फूटने पर माथे पर लगातार ठंढा पानी चढ़ाना बहुत ही लाभदायक है। नाक का एक छेद बन्दकर दूसरे से पानी चढ़ाया और पहले से निकाला जा सकता है। दोनों छेदों से पानी चढ़ाकर मुँह से भी निकाला जा सकता है। नाक साफ़ हो तो चढ़ाए हुए पानी के पेट में जाने से भी कोई डर नहीं। पानी

चढ़ाकर नाक साफ़ रखने की आदत बहुत ही अच्छी है।* नाक से पानी न चढ़ा सकनेवाले पिचकारी से चढ़ा सकते हैं। दो-चार वार प्रयत्न करने से पानी चढ़ाना आ जाता है। हर आदमी को यह क्रिया मालूम होनी चाहिए। क्योंकि सिर की बीमारियाँ ऐसे सहज उपाय से प्राय तुरन्त बन्द हो सकती हैं। नाक से बुरी बास आती हो तब भी यह इलाज काम का है। कितने ही लोगों की नाक में पपड़ी पड़ती है, इसके लिए भी पानी चढ़ाना रामबाण है।

बहुत लोग गुदा (मलद्वार) के रास्ते से पेट में पानी चढ़ाते आगा-पीछा करते हैं। कितने ही कहते हैं, इससे शरीर निर्बल हो जाता है; पर यह निरा भ्रम है। तुरन्द दस्त लाने के लिए गुदा के रास्ते से पानी की पिचकारी लेने की अपेक्षा दूसरा उत्तम इलाज नहीं है। बहुतेरी बीमारियों में जब दूसरा इलाज काम नहीं करता, तब यही करता है। इस इलाज से मल बिलकुल साफ़ हो जाता है और शरीर में नया ज़हर नहीं जमता। जिन्हें वातरोग हो, बादी हो, मेदे की ख़राबी से किसी प्रकार का भी दर्द हो, उन्हें गुदा द्वारा दो पाउण्ड (एक सेर) पानी की पिचकारी लेकर देखना चाहिए। तुरन्त दस्त हो जायगा। इस विषय पर एक मनुष्य ने एक पुस्तक लिखी है। उसने बहुतेरी दवाइयाँ कीं; किन्तु बदहज़मी के चंगुल से छुटकारा न पाया। उसका शरीर निर्बल होकर पीला पड़ गया

---

*नाक से पानी चढ़ाने के लाभ और उसकी तरकीबें "तरुण-भारत-ग्रन्थावली" से प्रकाशित "उपःपान" नामक पुस्तक में देखिये।

था। पिचकारी लेना शुरू करने के बाद ही भूख खुली और थोड़े ही दिनों में तबीयत बिल्कुल अच्छी हो गयी। पांडु रोग की बीमारियाँ भी पिचकारी द्वारा तुरन्त नष्ट की जा सकती हैं। यदि बार-बार पिचकारी लेने की ज़रूरत पड़े तो ठंडे पानी की लेनी चाहिए। बार-बार गरम पानी की पिचकारी लेने से कमज़ोरी आ जाने की सम्भावना रहती है। पर यह दोष पिचकारी का नहीं है।

जर्मन डाक्टर कूने ने अनेक प्रयोगों से यह बात निश्चित की है कि पानी का इलाज सर्वोत्तम है। इस विषय पर उसकी लिखी हुई पुस्तक ऐसी सर्वप्रिय हुई कि प्राय: सभी भाषाओं में उसके अनुवाद हुए हैं। कूने के सिद्धान्त से सब रोगों की जड़ मेदा है। मेदे में गर्मी होने से शरीर के बाहरी भाग में फोड़े-फुन्सी या दूसरी बीमारियाँ फूट निकलती हैं, या ताप बाहर निकलकर सारे शरीर को तपाने लगता है। कूने के पूर्व-लेखकों ने भी पानी के उपचार पर अपनी सम्मति दी है। "पानी के उपचार" नाम की एक पुस्तक कूने की पुस्तक से बहुत पहले लिखी जा चुकी थी। पर कूने के पहले किसी ने भी बीमारियों की एकता पर इतना ज़ोर नहीं दिया। किसी ने यह नहीं बतलाया था कि सब रोगों की मूल उत्पत्ति मेदे से है। हमें यह मान लेने की ज़रूरत नहीं कि कूने का सिद्धान्त सर्वांश में सत्य है। इस विचार से कोई मतलब भी नहीं। पर देखने से बहुतेरी बीमारियों के विषय में कूने के विचार और उपचार ठीक उतरते हैं। यह अनुभव-सिद्ध है। डरबन के मजिस्ट्रेट मि०

ट्रीटन धनुर्वात से बिलकुल अपंग हो गये थे। बहुतेरे डाक्टरों का इलाज किया; पर सब निष्फल। किसी ने कुने के यहाँ जाने की सलाह दी। वहाँ जाकर वे अच्छे हो आए। बहुत दिनों तक डरबन में सुख से रहे। वे हमेशा लोगों को कुने के उपचारों द्वारा लाभ उठाने की सलाह दिया करते थे। जलचिकित्सा-प्रचार के ऐसे बहुतेरे उदाहरण विद्यमान हैं।

डा० कुने ने लिखा है कि मेदे की गर्मी ठंढक पहुँचाने से मिटती है। इसके लिए उसने इस प्रकार ठंढे जल से स्नान करना बताया है जिससे मेदे के आस पास के भागों को ठंढक मिल सके। सरलतापूर्वक इस स्नान की सुविधा के लिए, उसने एक विशेष प्रकार का टीन का टब बताया है। पर हम इसके बिना भी काम चला सकते हैं। पुरुष और स्त्रियों के भिन्न-भिन्न कद के अनुसार छोटे-बड़े टीन के टब बाज़ारों में बिकते हैं। ये कुने-बाथ के लिए अच्छे हैं। टब का तीन-चौथाई भाग ठंडे जल से भर कर उसमें रोगी को इस तरह बिठाना चाहिए, कि उसके पैर और धड़ पानी के बाहर रहें। नाभी से लेकर जाँघों तक का भाग ही पानी के अन्दर रहे। अच्छा हो कि पैर किसी पीढ़े या पाटे के ऊपर रख दिए जाँय। बीमार को पानी में बिलकुल नंगे होकर बैठना चाहिए। ठंढक मालूम हो तो पैर और धड़ कम्बल से ढक दिए जांय। ऐसी दशा में बीमार को कुरता, बंडी, इत्यादि भी पहिनाई जा सकती है। पर ये चीज़ें पानी के बाहर रहनी चाहिएँ। यह स्नान ऐसी कोठरी में करना चाहिए जहाँ उजेला, हवा और

धूप आती हो। पानी में बैठकर, रोगी को खद्दर के छोटे अंगोछे से पानी के भीतर अपना पेट धीरे-धीरे स्वयं मलना या दूसरे से मलवाना चाहिए। यह स्नान पांच से बीस मिनट या उससे भी अधिक देर तक किया जा सकता है। प्रायः देखा गया है कि इस स्नान का असर तुरन्त होता है। बादी के बीमार को तो तुरन्त वायु सरने लगता है या डकारें आने लगती हैं। बुख़ार की दशा में तो स्नान के पांच मिनट बाद ही थर्मामीटर का पारा एक, दो या अधिक डिगरी नीचे ज़रूर उतर आता है। दस्त साफ़ होने लगता है। थकावट मिट जाती है। जिन को नींद बिलकुल नहीं आती, उन के मस्तिष्क की गर्मी शान्त होकर नींद आने लगती है। ज़्यादा नींदवाले जगने लगते हैं और उनमें फुर्तीलापन आ जाता है। सरसरी तौर पर देखने से इस स्नान से परस्पर-विरोधी परिणाम—उदाहरणार्थ नींद आना और नींद दूर हो जाना—निकल सकते हैं, पर ऐसा नहीं है। यहां इतना बता देना आवश्यक है कि नींद न आना, या बहुत आना, ये दोनों बातें एक ही कारण के भिन्न-भिन्न परिणाम हैं। इनमें केवल देखने भर का विरोध है। अतीसार और बद्धकोष्ठ दोनों बद-हज़मी के नतीजे हैं। किसी को अतीसार हो जाता है, और किसी को बद्धकोष्ठ। इन दोनों पर ही कूने के स्नान का बहुत ही अच्छा असर होता है। बहुत पुराना बवासीर (अर्श) भी इस स्नान से और इसके साथ ही ख़ूराक इत्यादि के उपचार से दूर हो सकता है। बहुत थूकने की आदत वालों को तुरन्त

स्नान शुरू कर देना चाहिए। शुरू करते ही फ़ायदा जान पड़ेगा। इस स्नान से निर्बल मनुष्य भी बलवान हो जाते हैं। बहुत लोगों का संधिवात (गठिया) तक अच्छा हो गया है। रक्त-स्राव के लिए यह स्नान बहुत ही उपयोगी है। इससे रक्तविकार भी दूर हो जाता है। माथा दुखने पर यदि कोई मनुष्य यह स्नान करे तो उसका दर्द तुरन्त हलका पड़ जायगा। कूने तो इसे नासूर सरीखे भंयकर रोगों में भी अमूल्य गिनता है। गर्भिणी स्त्री यह स्नान करती रहे तो उसे प्रसव-काल में बहुत ही कम कष्ट हो। बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री और पुरुष सभी यह स्नान कर सकते हैं।

इसके सिवा स्नान की एक रीति और भी है, जो कुछ बीमारियों के लिए अक्सीर है। इसे 'वेट-शीट-पेक' अर्थात् 'भीगी चादरों का वेष्टन' कहते हैं।

खुली हवा में एक लम्बी मेज़ वा तख़्ते पर चार, या हवा के अनुसार कम ज़्यादा, कम्बल लटकते हुए बिछा दें। इन पर दो मोटी और साफ़ चादरें ठंढे पानी में पूरी तरह भिगोकर लटकती हुई बिछावें। माथे की ओर कम्बलों के नीचे एक तकिया रखें। अब बीमार को नंगा करें। वह चाहे तो एक छोटा रूमाल या लँगोटी कमर में पहन सकता है। ऊपर बताई रीति से तैयार की हुई चादरों पर बीमार को चित लिटाकर चादर और कम्बलों को एक-एक करके दोनों ओर से उसके शरीर पर लपेट दें। धूप हो तो बीमार के मुँह और माथे पर भीगा रूमाल लपेट दिया जाय। नाक सदा खुली रहे। बीमार

को ज़रा देर कँपकँपी लगेगी। फिर आराम मालुम होगा और शरीर को भली मालुम होनेवाली गरमी लगेगी। इस स्थिति में बीमार पांच मिनट से एक घंटे, या इससे भी अधिक देर तक रह सकता है। अन्त में गरमी से पसीना बह निकलता है। प्रायः देखा गया है कि ऐसी स्थिति में बीमार सो जाता है। बीमार को चादर से बाहर निकालने पर पानी से नहलाना चाहिए। चमड़े की अनेक बीमारियों की यह उत्तम दवा है। खुजली, दाद, सेहुँवा, चेचक, साधारण फोड़े और बुख़ार आदि पर चादर का वेष्टन बहुत ही गुण करता है। चेचक की बीमारी कितनी ही भयंकर क्यों न हो, इस उपचार से बहुत करके नष्ट हो सकती है। शरीर पर यदि चट्टे पड़ गए हों तो एक या दो बार इस बाथ (स्नान) के लेने से मिट जाते हैं। इस बाथ का खुद लेना या किसी दूसरे को देना बहुत आसानी से सीखा जा सकता है। स्वयं अनुभव करके इसकी उपयोगिता जानी जा सकती है। इस बाथ से शरीर के चमड़े का बहुत सा मैल चादर में लिपट जाता है। इसलिए एक बार काम में लाई हुई चादर खौलते हुए पानी में खूब धोए बिना उसी बीमार या दूसरे किसी के काम में न लानी चाहिए।

अन्त में ऊपर लिखे हुए पानी के उपचारों के विषय में इतना याद दिलाना आवश्यक है कि जो मनुष्य पानी, हवा, खुराक, और कसरत आदि की उपेक्षा करके केवल स्नान ही का सहारा लेगा उसे उसका लाभ या तो बहुत कम या बिलकुल ही नहीं मालुम होगा। मान लीजिए कि एक संधिबात

का रोगी कूने-बाथ या चादर-वेष्टन का उपचार शुरू करे, पर अभक्ष्य भक्षण करे, अस्वच्छ हवा में रहे, गन्दगी में पड़ा सड़े और कसरत न करे तो उसे अकेले बाथ से आरोग्य कैसे प्राप्त हो सकता है? तन्दुरुस्ती के दूसरे सब नियम पालने से ही पानी का उपचार मददगार हो सकता है। इस में जरा भी सन्देह नहीं कि अगर तन्दुरुस्ती के दूसरे नियमों का पालन पूरी तरह किया जाय तो पानी के उपचार से बीमार बड़ी जल्दी आराम हो सकता है।

३—मिट्टी के उपचार

जलोपचार के लाभ बतलाए गए; पर कितने ही रोगों में मिट्टी का उपचार इससे भी अधिक चमत्कारिक देखा गया है। हमारे शरीर का अधिक भाग मिट्टी से बना है। इसलिए उस पर मिट्टी का असर होना कोई नयी बात नहीं है। बहुत लोग मिट्टी को पवित्र मानते हैं। दुर्गन्ध मिटाने को ज़मीन पर मिट्टी लीपते हैं, सड़ी चीज़ों पर मिट्टी डालते हैं, अपवित्र हाथों को मिट्टी से धोकर पवित्र करते हैं, गुदा-भाग भी मिट्टी लगाकर पवित्र किया जाता है। योगी लोग शरीर पर मिट्टी लगाते हैं। यहां के देशी-विदेशी लोग फोड़े-फुन्सियों में मिट्टी का उपयोग करते हैं। हम पानी साफ़ करने के लिए बालू या मिट्टी में से छानते हैं। मुर्दे ज़मीन के अन्दर गाड़ देने से हवा में गन्दगी नहीं पैदा होती। मिट्टी की इस प्रत्यक्ष महिमा से हम अनुमान कर सकते हैं कि उसमें कितने ही विशेष गुण अवश्य हैं।

जैसे कूने ने पानी पर खूब विचार कर कितनी ही उपयोगी बातें लिखी हैं, वैसे ही जुस्ट नामक एक अन्य जर्मन ने मिट्टी के सम्बन्ध में अनेक लाभदायक बातें बतायी हैं। यहाँ तक कहा है कि मिट्टी के उपचार से असाध्य रोग भी मिट सकते हैं। उसका कहना है कि एक वार मेरे पास किसी गांव में किसी आदमी को सांप ने काट खाया, बहुतों ने मरा समझ लिया। पर वहां किसी आदमी ने मुझसे सलाह लेने की बात कही। मैंने उसे मिट्टी में गड़वा दिया। थोड़ी देर वाद उसे होश आगया। यह अनहोनी बात नहीं है। और कोई कारण नहीं कि जुस्ट झूठ लिखता। यह तो साफ़ दिखाई पड़ता है कि मिट्टी में गाड़ देने से बहुत गर्मी निकलती है। हमारे पास यह जानने के साधन नहीं हैं कि मिट्टी में मौजूद, किन्तु अदृश्य, जन्तुओं ने शरीर पर क्या काम किया है। पर यह निर्विवाद है कि मिट्टी में ज़हर इत्यादि चूस लेने की शक्ति है। इसपर भी जुस्ट ने लिखा है कि इससे मेरा यह मतलब नहीं कि सभी सांप के काटे मिट्टी के इलाज से जी उठते हैं। पर ऐसे समय में मिट्टी का उपचार करना चाहिए। बर्रे और बिच्छू के डंक पर मिट्टी के उपयोग की मैंने खुद भी आजमाइश की है और उससे तुरन्त आराम मालूम हुआ है। मिट्टी को ठंढे पानी में सान कर, उसकी गाढ़ी पुल्टिस-सी बनाकर, डँसे हुए स्थान पर रखकर, कपड़े से बांध दें। नीचे बतलाये हुए रोगों में मैंने इस उपचार को खुद आजमाया है। पेट में मरोड़ होनेवालों के पेड़ू पर मिट्टी की पुल्टिस बाँधने से दो-तीन दिन में मरोड़

बन्द होगई है। सिर में दर्द होने पर मिट्टी की पुल्टिस रखने से तुरन्त ही आराम मालूम हुआ है। आंख उठने पर भी यह पुल्टिस बांधने से लाभ देखा गया है। चोट में मिट्टी की पुल्टिस बांधने से सूजन और दर्द दोनों दूर हो जाते हैं। बहुत दिनों तक मेरी यह दशा थी कि मैं फ्रूट साल्ट इत्यादि लिये बिना नीरोग नहीं रहता था। १६०४ ई० में मुझे मिट्टी की उपयोगिता मालूम हुई। तब से फ्रूट-साल्ट इत्यादि चीज़ें छूट गईं। फिर किसी दिन इनको लेने की ज़रूरत न पड़ी। कोष्ठबद्धता में पेड़ू पर मिट्टी की पुल्टिस बांधने से पेट नरम पड़ जाता है। अतीसार भी मिट्टी बांधने से जाता रहता है। तेज़ बुख़ार में माथे और पेड़ू पर मिट्टी बांधने से एक-दो घन्टे बाद बुख़ार बहुत कम हो जाता है। फोड़े, फुन्सी, दाद और खुजली इत्यदि पर मिट्टी की पुल्टिस प्रायः बहुत अच्छा असर करती है। हां, ऐसे फोड़ों पर मिट्टी की उपयोगिता कम हो जाती है जो मवाद देते रहते हैं। बवासीर के लिए मिट्टी बहुत लाभदायक है। पाला लग जाने से प्रायः हाथ-पैर लाल होकर सूज आते हैं। इसपर मिट्टी की पुल्टिस अपना असर किए बिना नहीं रहती। पैरों की उँगलियों में खाज हो जाने पर मिट्टी गुणकारी देखी गयी है। दुखते हुए जोड़ों पर मिट्टी लगाने से तुरन्त फायदा होता है। मिट्टी के बहुत से प्रयोग करते हुए मुझे मालूम हुआ कि घरेलू इलाज के लिए मिट्टी एक अमूल्य वस्तु है।

सब प्रकार की मिट्टी समान गुणवाली नहीं होती। सुर्ख

मिट्टी अधिक असर करने वाली पायी गयी है। मिट्टी सदा साफ़ जगह से खोदकर निकालें। जिस मिट्टी में गोबर इत्यादि का मेल हो उसे उपयोग में न लाना चाहिए। मिट्टी बहुत चिकनी न हो। बलुई चिकनी मिट्टी अच्छी समझी जाती है। उसमें किसी प्रकार का कूड़ा-कचरा न हो। मिट्टी को बारीक चलनी से चालकर काम में लाना अधिक उपयोगी है। मिट्टी सदा ठंढे पानी में भिगोवें। गूंधे हुए आटे के समान कड़ी मिट्टी रखनी चाहिए। साफ़, बिना कलप के, झंझरे कपड़े में बांधकर पुल्टिस की तरह पर रखें। शरीर पर सूखने के पहले ही मिट्टी को खोल लें। साधारणतः एक दफे की पुल्टिस दो से तीन घंटे तक चल सकती है। काम में लाई हुई मिट्टी दोबारा काम में न लावें। पुल्टिस में बँधा हुआ कपड़ा धोकर दोबारा बांधने के काम में आ सकता है। लेकिन उसमें पीब इत्यादि न लगी हो। पेड़ू पर पुल्टिस बांधनी हो तो पहले पुल्टिस पर एक गरम कपड़ा रखें तब उस पर पट्टी चढ़ावें। हर आदमी को एक डब्बे में मिट्टी भर रखनी चाहिए। जिसमें मौके पर ढूँढ़ने न जाना पड़े। बिच्छू इत्यादि के डंक पर जितनी ही जल्दी मिट्टी लगाई जाती है उतना ही अधिक फ़ायदा होता है।

बारहवां परिच्छेद

१—ज्वर और उसकी चिकित्सा

हम लोग शरीर की हर तरह की हरारत को ज्वर कहते हैं। अंग्रेज़ी डाक्टरों ने ज्वर के बहुत से भेद बतला कर उन पर अलग-अलग पुस्तकें लिखी हैं और उन भेदों का खूब विस्तार किया है। अधिकतर बुखारों में एक ही इलाज काम कर सकता है। साधारण बुखार से लेकर प्लेग तक के बुखार में मुझे तो कम से कम एक ही इलाज का अनुभव हुआ है और उसका परिणाम ठीक निकला है। १९०४ ई० में अफ्रीका में हम लोगों में महामारी फूट निकली। उसमें तेईस आदमी बीमार हुए। चौबीस घंटे के अन्दर इक्कीस आदमी मर गये। दो प्लेग के अस्पताल में पहुँचा दिए गये। दोनों में से एक ही अन्त तक जीता रहा। यह वह आदमी था जो अकेला मिट्टी की पुल्टिस का उपयोग कर सका था। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उस रोगी को मिट्टी ही से लाभ पहुँचा; परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि उस मिट्टी के कारण उसे और किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँची। इन दोनों बीमारों के फेफड़ों

में सूजन हो जाने से बुख़ार आया था। दोनों बेहोशी में पड़े हुए थे। जिसकी छाती पर मिट्टी की पुल्टिस बांधी गई थी उसकी बीमारी ऐसी भयंकर थी कि उसके मुँह से कफ की भांति खून तक गिर रहा था। डाक्टर से मुझे मालूम हुआ कि इसे पहले बहुत कम खुराक दी जाती थी और सो भी दूध की।

बुख़ार को उत्पत्ति अधिकतर मेदे की ख़राबी से होती है। इसलिए पहला उपाय रोगी को बिलकुल उपवास कराना है। कुछ कमजोर या बुखार वाला मनुष्य बिना खाए बिलकुल कमज़ोर हो जायगा, यह निरा भ्रम है। जितनी खूराक का पचने के बाद खून बन सकता है उतनी ही काम की है, और बाक़ी पेट में सीसे के डले के समान पड़ी रहती है। बुख़ार वाले मनुष्य का मेदा बहुत कमज़ोर होजाता है, उसकी जीभ काली या सुफेद रहती है, ओंठ सूखे रहते हैं। इस हालत में वह मनुष्य क्या पचा सकता है? उसे भोजन करने को दिया जाय तो बुख़ार अवश्य बढ़ेगा। खाना एकदम बन्द कर देने से मेदे को अपना काम करने का मौका मिलता है। इसलिए बीमार को एक-दो या अधिक दिन तक उपवास कराना चाहिए। उपवास के दिनों में भी कूने-बाथ देना चाहिए। कम-से-कम दो बाथ तो रोज ही लेने चाहिएं। रोगी बाथ ले सकने लायक न हो तो पेडू पर मिट्टी की पुल्टिस बांधे। माथा दुखता हो, अथवा अधिक गरम होगया हो, तो माथे पर भी मिट्टी बांधनी चाहिए। जहां तक हो, बीमार खुली हवा

में रखा जाय; किन्तु उसका बदन ढँका रहे। भोजन आरम्भ कराने के समय नारंगी का गरम या ठंडा पानी दिया जाय। नारंगी को दबाकर रस निकाल लें और उसमें आवश्यकतानुसार ठंढा या उबाला पानी मिला दें। यथासम्भव उसमें शक्कर न डालें। नारंगी के इस पानी का असर बहुत अच्छा होता है। यदि बीमार के दांत गुठला न जाते हों, और वह ले सके, तो ऊपर की रीति से बनाया हुआ नींबू का ही पानी वह ले। इसके बाद उसे आधा या एक केला, एक चम्मच जैतून के तेल तथा एक या आधा चम्मच नींबू के पानी में खूब मलकर दें। प्यास लगने पर उबाला हुआ ठंढा पानी या नींबू का पानी दें। बिना उबाला पानी कभी न दें। साफ़ पानी प्राप्त करने की तरकीब पहले बतायी जा चुकी है। वहां से देख लें। बीमार को कपड़े बहुत कम पहिनावें और हमेशा बदलते रहें। ओढ़ने वाला कपड़ा यदि काफ़ी हो तो और कपड़ों की ज़रूरत ही नहीं रहती। ऐसे उपचारों से 'टाईफाइड' जैसे भयंकर बुख़ार के रोगी भी बिलकुल अच्छे होकर अब खूब तन्दुरुस्त हैं। कुनैन आदि दवाइयों से भी मनुष्य अच्छे हो जाते हैं; किन्तु उन्हें एक रोग से छूटकर दूसरे के पंजे में फँसना पड़ता है। लोग कहते हैं कि कुनैन के प्रयोग से 'मलेरिया' वाले रोगी तो ज़रूर ही अच्छे हो जाते हैं; परन्तु मेरा ख़्याल है कि उन्हें 'मलेरिया' शायद ही छोड़ता हो। लेकिन ऊपर बताई हुई प्राकृतिक दवा लेनेवालों को मैंने मलेरिया रोग से भी बिलकुल आराम होते देखा है।

बहुत लोग बुख़ार में दूध पीकर रहते हैं। पर मेरा अनुभव है कि बुख़ार के शुरू में दूध देना हानिकारक है। उसका पचना कठिन होजाता है। यदि दूध देना हो तो गेहूं की काफ़ी के साथ दूध में थोड़ा-सा चावल का आटा और पानी डाल पकाकर देना किसी क़दर अच्छा है। परन्तु सख़्त बुख़ार या विषम-ज्वर में इस प्रकार से भी दूध नहीं दिया जा सकता। ऐसी दशा में नींबू का पानी बहुत ही चमत्कारिक गुण दिखाता है। जब बीमार की जीभ साफ़ हो जाय तब केले की खुराक आरम्भ करनी चाहिए। बीमार को दस्त न हो तो रेचक दवा देने के बदले थोड़ा सुहागा डालकर गरम पानी की पिचकारी देने से पेट साफ़ हो जायगा और तब 'ओलिव आयल' वाली खुराक उसके पेट को साफ़ कर दिया करेगी।

२—क़ब्ज़, संग्रहणी, पेचिश, बवासीर

इस प्रकरण में एक ही साथ चार रोगों का विचार है। साधारणतः यह आश्चर्यजनक मालूम होगा। पर इन चारों का परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, और हमारा बिना औषधि का उपचार चारों के लिए प्रायः एक ही है। मेदे पर बहुत बोझा पड़ने से कितने ही लोगों को उनके शरीर की गठन के अनुसार कब्ज़ होजाता है। अर्थात् दस्त या तो नियमानुसार नहीं होता या खुलकर नहीं होता। दस्त उतरने के लिए उन्हें कांखना पड़ता है। यह बात यदि बहुत दिनों

तक बनी रहीं तो खून गिरने लगता है। इससे कभी-कभी कांच निकलने लगती है अथवा अर्श (बवासीर) के मंसे निकल आते हैं। किसी को मेदे पर अधिक बोझ पड़ने से दस्त आने लग जाते हैं। इसका सिलसिला बहुत दिनों तक जारी रहता है। वार वार पाखाने जाने पर भी हाजत बनी ही रहती है। दस्त बहुत थोड़ा होता है। इस दशा को संग्रहणी कहते हैं। कितनों को पेचिश होजाती है, तब आंव पड़ने लगती है और पेट में पीड़ा रहती है।

इनमें से हर रोग में भूख कम लगती है। रोगी का शरीर फीका पड़ जाता है। ताक़त नहीं रह जाती और सांस में बदबू रहती है। जीभ बिगड़ती रहती है। कितनों का माथा दुखता है और कितनों को दूसरी बीमारियाँ घेर लेती हैं। कब्ज़ ऐसी फैली हुई बीमारी है कि उसके लिए सैकड़ों दवाइयाँ और फंकियाँ बनी हैं। मधर्स-सिगल-शिरप, फ्रूट साल्ट इत्यादि दवाइयों का मुख्य काम ही कब्ज़ियत मिटाना है और कब्ज़ मिटाने की धुन में हज़ारों मनुष्य ऐसी दवाइयों के पीछे हैरान होते हैं। साधारण वैद्य और डाक्टर तुरन्त ही कहेंगे कि कब्ज़ इत्यादि बीमारियों की जड़ बदहजमी है, और वे यह भी कहेंगे कि यदि बदहजमी का कारण दूर कर दिया जाय तो ये बीमारियां मिट जायें। इनमें जो ईमानदार हैं वे साफ़ कहते हैं कि हमारे रोगी अपनी बुरी आदतें नहीं छोड़ना चाहते और रोग मिटाना चाहते हैं, इसी से हमें फंकी, चूर्ण और काढ़े देने पड़ते हैं। आजकल के विज्ञापनबाज़ तो यहां तक

कह देते हैं कि हमारी दवा में न परहेज़ करने की ज़रूरत है और न आदत बदलने की। केवल औषधि सेवन मात्र से रोग दूर होजायगा। इस प्रकरण के पढ़नेवाले समझ गए होंगे कि ये विज्ञापन सरासर दगाबाजी के हैं। जुलाब इत्यादि का असर हमेशा बुरा होता है। हलके से हलका जुलाब भी कब्ज़ को मिटाकर शरीर में दूसरा ज़हर पैदा करता है। जुलाब लेकर भी यदि मनुष्य अपनी पिछली बुरी आदत छोड़ दे और इस प्रकार चले कि फिर उसे जुलाब न लेना पड़े तो सम्भव है कि जुलाब से कुछ फायदा उठा सके। पर उसने अपनी आदत जारी रखी तो चाहे जुलाब से कब्ज़ और संग्रहणी आदि बीमारियाँ उसे न भी हों, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसे कोई दूसरी नई बीमारी ज़रूर होजायगी।

अब हमें ऊपर की बीमारियों के उपाय पर विचार करना चाहिए। पहला उपाय तो यह है कि इन बीमारियों से पीड़ित मनुष्य अपनी खुराक कम कर दे। बहुत भारी खुराक—बहुत घी-शक्कर और रबड़ी-मलाई आदि से सदा बचें। यदि बीड़ी, शराब, भाँग इत्यादि का व्यसन हो तो उसे छोड़ ही देना चाहिए। मैदे की रोटी खाने की आदत हो तो उसे भी छोड़ दें। चाय, काफी और कोको से परहेज़ करें। भोजन में ताज़े फलों का उपयोग मुख्य रूप से करें। और उसके साथ शुद्ध-जैतून के तेल का भी व्यवहार करें।

इलाज शुरू करने से पहले छत्तीस घंटे तक उपवास करें। इस बीच में तथा इसके बाद सोते समय पेड़ू पर मिट्टी की

पुलटिस बाँधें, और दिन में एक से लेकर दो दफे तक कूने-बाथ लें। रोज कम से कम दो घन्टे ज़रूर लें। जो लोग ऐसा करेंगे, उन्हें निस्सन्देह लाभ जान पड़ेगा। इस इलाज से अतीसार, कड़ा कब्ज, परेशान करनेवाली पेचिश और बहुत पुरानी बवासीर को नष्ट होते हुए मैंने स्वयं देखा है। बवासीर के विषय में इतना ही कह देना चाहिए कि उसके मसे उपरोक्त इलाज से नहीं मिटते। परन्तु बवासीर बिलकुल कष्ट नहीं देती और मनुष्य को मसों के रहने तक की ख़बर नहीं रहती। पेचिश, मरोड में यह बात याद रखनी चाहिए कि जब तक खून या आँव पड़ती हो तब तक खुराक बिलकुल नहीं लेनी चाहिए, और जब कुछ लेने की ज़रूरत मालूम हो तो गरम पानी में नारंगी का छना हुआ रस पीना चाहिए। ऐसा करने से कठिन-से-कठिन पेचिश कम-से-कम समय में दूर हो जायगी और बीमार को कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। मरोड़ के समय यदि बहुत सख़्त तकलीफ होती हो तो एक बोतल में खूब गरम पानी डालकर उससे, या खूब गरम ईंट से, पेट सेंकने से वह दूर हो जायगी। बीमार को इन रोगों में भी सदा की भांति खुली हवा की ज़रूरत है। कब्ज में नीचे लिखे मेवे ख़ास तौर पर गुणकारी हैं:—अंजीर, फ्रेञ्च प्लम्स (बेर) बड़ा मुनक्का, नारंगी, केला, किशमिश। इसका यह मतलब नहीं कि भूख न होने पर भी ये मेवे खाने ही चाहिएं। मरोड़ हो रही हो अथवा मुँह का स्वाद ख़राब हो तो ये मेवे भी खाने से हानि ही होगी। ऊपर के बाथ का

यही मतलब है कि जिस समय खाने की आवश्यकता हो उस समय ऊपर के मेवे कब्ज़ दूर करने के लिए बहुत गुणकारी हैं।

तेरहवां परिच्छेद

छूत के रोग

१—शीतला (चेचक)

बुख़ार इत्यादि कितने ही रोगों के विषय में हम पहले थोड़ा विचार कर चुके हैं। सब बीमारियों के विषय में सूक्ष्म विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है। इसके सिवा सब रोगों के उत्पन्न होने का कारण अधिकांश में एक ही समझा जाता है और सब रोगों की दवा भी अधिकांश में एक ही ख़याल की जाती है। तब हर रोग का अलग-अलग विचार करना आवश्यक भी नहीं मालूम होता। हम शीतला तथा अन्य छूत के रोगों की उत्पत्ति का एक ही कारण समझते हैं। इसलिए उनका विचार अलग करने की ज़रूरत नहीं जान पड़ती। अतएव एक ही परिच्छेद में शीतला तथा अन्य छूत के रोगों का विचार करना अनुचित न होगा।

शीतला के रोग से हम बहुत डरते हैं। लोगों में शीतला के विषय में बहुत भ्रमपूर्ण विचार फैल रहे हैं।

हिन्दुस्तान में तो शीतला एक खास देवी ही मान ली गयी है और उसके लिए असंख्य मनुष्य मिन्नतें मानते हैं, और चढ़ावा होता है। शीतला भी और बीमारियों की भांति खून बिगड़ने ही से होती है। खून मेदे की हरारत से बिगड़ना शुरू होता है। शरीर अपने अन्दर के जहर को शीतला के रूप में बाहर निकालता है। यह विचार ठीक हो तो शीतला से डरने का कोई कारण नहीं। यदि शीतला की बीमारी छूत से ही लगती होती हो तो शीतला के बीमार को छूनेवाले सभी लोगों को यह बीमारी हो जानी चाहिए। पर हम रोज देखते हैं कि ऐसा नहीं होता। अत. शीतला के बीमार को छूने से डरने की जरूरत नहीं। फिर भी सावधानी की जरूरत है। एकदम से यह भी नहीं कहा जा सकता कि शीतला की छूत लगती ही नहीं। जिनके शरीर उसकी छूत ग्रहण करने योग्य हैं वे शीतला के रोगी को छूएँगे तो छूत का असर जरूर पड़ेगा। और यही कारण है कि जिस जगह शीतला की बीमारी फैलती है वहां बहुत लोग एक ही समय इसके चंगुल में फँस जाते हैं। इस प्रकार इसे छूत की बीमारी मानकर टीका लगाया जाता है और मनुष्यों को समझाने अथवा बहकाने की कोशिश की जाती है कि टीका लेने से निर्दोष शीतला निकलती है और उससे शीतला की बीमारी बन्द होती है। गाय के थन में शीतला का लस लगा कर उसमें से निकली हुई पीव को हमारे शरीर में प्रवेश करने का नाम टीका है। कहा जाता है कि ऐसा करने से मनुष्य के शरीर पर शीतला निकल

आती है और वे महाशीतला के भय से बच जाते हैं। पहले यह बात मानी जाती थी कि इस प्रकार एक बार शीतला निकल आने से उस मनुष्य को फिर वह नहीं निकलती; किन्तु अनुभव द्वारा जब यह बात मालूम हुई कि टीका लेने पर भी मनुष्य बहुत दिनों तक इस रोग से मुक्त नहीं रह सकता, तब यह कहने लगे कि अमुक समय के बाद फिर टीका लेना चाहिए। अब आजकल तो यह रवाज होगया है कि जहाँ-जहाँ जब-जब शीतला की बीमारी शुरू हो तब-तब वहाँ के सब लोगों को, चाहे वे टीका लगवा चुके हों या न लगवा चुके हों, टीका अवश्य लगवाना चाहिए। इस प्रकार अब बहुत से ऐसे मनुष्य दिखाई पडने लगे हैं जिन्होंने पांच-छः या इससे भी अधिक बार टीका लिया है।

टीका लेना बहुत ही जंगली रवाज है। इस ज़माने में फैले हुए भ्रमो में से यह एक विषैला भ्रम है। जंगली समझे जाने वाले लोगों में ऐसे भ्रम नहीं दिखलाई पड़ते। इस भ्रम के हिमायतियों को इतने ही से सन्तोष नहीं होता कि जिसकी खुशी हो वह टीका लगवाए—बल्कि वे लोग इसके लिए लोगों को मजबूर करते हैं। टीका लगवाने से इनकार करने वालों पर कानूनन मुकद्दमा चलाया जाता है और सख़्त सज़ा दी जाती है। टीके की खोज सन् १७९८ई० में हुई है। इससे मालूम होता है कि यह कोई पुराना वहम नहीं है। इतने थोड़े समय में लाखों आदमी इस वहम के शिकार बन गये हैं। जिन्हें टीका लगा दिया जाता है उन्हें शीतला से सुरक्षित

समझ लिया जाता है। पर यह मानने के लिए एक भी सबल कारण नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि टीका न लगवाने से बड़ी शीतला निकलती ही है। इसके विरुद्ध टीका न लगवाने वालों में शीतला न निकलने के अनेक उदाहरण दिखाए जा सकते हैं। जिन लोगों ने टीका नहीं लिया उनमें शीतला निकलने के उदाहरण द्वारा यह बात नहीं कही जा सकती कि यदि ये लोग टीका लेते तो शीतला से मुक्त रहते।

टीका बहुत गन्दा इलाज है। इसमें यही दोष नहीं कि गाय की शीतला की लस हमारे शरीर पर लगायी जाती है, बल्कि मनुष्य की लस भी लगाई जाती है। लोग साधारणतः पीब को देखकर क़ै कर देंगे। जिनके हाथ में पीब लग जाती है वे साबुन से हाथ धोते हैं। यदि हमें कोई दिल्लगी से भी पीब चीखने को कहे तो सुनकर हमारा जी मचलाने लगेगा और हम लड़ने को तैयार हो जायँगे। फिर भी शायद ही किसी ने सोचा होगा कि टीका लेकर हम पीब अर्थात् सड़ा हुआ खून पीते हैं। यह प्रायः सब लोग जानते होंगे कि न जाने कितने लोगो को बीमारी में दवा या प्रवाही ख़ूराक चमड़े के मार्ग से भीतर पहुँचाई जाती है। इसका असर मुँह से खाई हुई ख़ूराक से जल्दी होता है। मुँह से खाई हुई चीज़ खून के साथ फ़ौरन नहीं मिलती; किन्तु चमड़े के मार्ग से गई चीज़ तुरन्त खून के साथ मिल जाती है; और ज़रा-सी चीज़ का असर भी तत्काल हो जाता है। इससे मालूम हो गया कि शरीर पर असर पहुँचाने में चमड़े द्वारा गयी हुई

दवा या खुराक मुँह के द्वारा खाने के समान ही है। तब हम शीतला से बचने के लिए पीव पीते हैं। एक कहावत प्रसिद्ध है कि कायर मौत के पहले ही मर जाता है। शीतला निकलने पर मरने या कुरूप होने के भय से टीका लेकर हम पहले ही मर जाते हैं।

इस प्रकार शरीर में पीव डलवाना मेरी समझ में तो बिल्कुल धर्म-भ्रष्टता है। मांसाहारी मनुष्यों को भी खून पीने की मनाही है। जीवित प्राणियों का खून और मांस तो खाया ही नहीं जाता। टीके के द्वारा जो चीज़ हमारे शरीर में प्रविष्ट की जाती है, वह तो निरपराध जीवित प्राणी का सड़ाया हुआ खून है। यही हमें चमड़े के द्वारा खिलाया जाता है। खून पीने के बदले हज़ार बार शीतला का निकलना, और यहां तक कि मर जाना, एक आस्तिक मनुष्य पसन्द करेगा।

इङ्गलैण्ड के कितने ही विद्वानों ने टीके की हानियों को अनुभव किया है। आजकल टीके के विरोध में वहां पर एक बड़ी भारी संस्था काम कर रही है। जो उस संस्था के मेम्बर होते हैं, वे टीका नहीं लगवाते, और दूसरों के लिए भी वे खुल्लमखुल्ला विरोध करते हैं। इसी विरोध के कारण कितने ही लोगों को जेल जाना पड़ा है। कोई भी टीका न ले, इसके लिए वे प्रयत्न करते हैं। टीके के विरोध में बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं और बड़ी-बड़ी सभाएँ करके टीके का विरोध होता है। टीके के विरोध में जो बड़ी-बड़ी दलीलें पेश की जाती हैं, वे निम्न लिखित हैं:—

१—गाय या बछिया के थन में से लस निकालने के लिए जो तरीके व्यवहार में लाए जाते हैं, वे जीवित पशुओं के साथ अत्यन्त निर्दयता का परिचय देते हैं। यह निर्दयता मनुष्य जाति के लिए शोभा नहीं देती। मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि यदि इस लस से कुछ लाभ भी होता हो तो भी उससे परहेज़ रखें और उसके प्रयोग का विरोध करें।

२—इस लस से लाभ कुछ नहीं होता। उलटी हानि ही होती है—मनुष्यों को दूसरे रोगों की छूत आ लगती है। वे समझते हैं कि शीतला के फैलने के बाद दूसरे रोग फैले हैं।

३—मूल पस मनुष्यों के रक्त से तैयार की हुई होती है। इस लिए वे सब पसें जिन जिन मनुष्यों के रक्त से बनाई जाती हैं उनमें, उन-उन मनुष्यों के अन्य-अन्य रोगों की छूत का भी आ जाना सम्भव है।

४—ऐसा विश्वास नहीं दिलाया जा सकता कि टीका लगाने से मनुष्य को शीतला नहीं निकलती। इस टीके का निकालने वाला डाक्टर जेनर कहा करता था कि एक हाथ में टीका लगाने से मनुष्य सदा के लिए रोग से छुटकारा पा जाता है। इससे जब पूरा लाभ होता नहीं देख पड़ा तब यह कहा जाने लगा कि दोनों हाथो में टीका लगाने से शीतला नहीं निकलती। इसके बाद दोनों हाथों में एक से अधिक टीका लगाने की बात कही जाने लगी। फिर भी जब शीतला निकलने लगी, तब यह कहा जाने लगा कि टीका लगाने के बाद यह विश्वास नहीं दिलाया जासकता कि सात

वर्ष के बाद भी शीतला न निकलेगी। अब सात की जगह तीन ही वर्ष कहे जाते हैं। इस तरह डाक्टर लोग स्वयं भी इस विषय में अब तक कुछ निर्णय नहीं कर सके हैं। असल बात तो यह है कि टीका लगाने से शीतला न निकलेगी, यह मानना बिलकुल वहम है—मिथ्या है। यह कोई साबित नहीं कर सकता कि टीका लगाने से जिन्हें शीतला न निकली उन्हें टीका न लगाने से अवश्य ही निकलती।

५—आखिरी दलील में वे कहते हैं कि लस लगाना बिलकुल गन्दा रिवाज है, और गन्दगी से ही गन्दगी का दूर किया जाना निरा जंगलीपन है। ऐसी ही अन्यान्य दलीलों से इस सभा ने अंग्रेज़ी प्रजा पर बड़ा अच्छा प्रभाव डाला है। इङ्गलैण्ड में एक ऐसा शहर है कि वहाँ की बस्ती का बहुत बड़ा हिस्सा टीका नहीं लगवाता। इस शहर के लोगों की गिनती के हिसाब से रोग बहुत कम देखने में आता है। इस सभा के परिश्रमी सभासदों ने खोज करके सिद्ध कर दिया है कि डाक्टर लोग स्वार्थ-वश टीके के वहम को दूर नहीं होने देते। उन्हें इसमें प्रति वर्ष लोगों से हज़ारों पौंड की आय होती है। वे समझ-बूझकर टीके से होती हुई हानि को नहीं देखते। परन्तु इन डाक्टरों में से भी बहुतों ने यही मत प्रकट किया है कि टीके का लगवाना बुरा है और कितने ही टीके के घोर विरोधी हैं।

कुछ लोग कहेंगे कि टीका लगवाने से जब इस प्रकार हानि होती है तब हमें यह नहीं लगवाना चाहिए। इसका

उत्तर में तो निर्भय होकर यही दूँगा कि 'नहीं'। इतना होने पर भी एक अपवाद है। मेरा कहना है कि जान-बूझकर अपनी इच्छा से तो किसी को भी टीका न लगवाना चाहिए। परन्तु जहाँ हम रहते हैं और वहां टीका लगाने का कानून हो तो हमारा कर्तव्य है कि हम टीका लगवा लें। वहां टीका न लगवाना भयंकर जोखम उठाने के बराबर है। और यदि हम कानून का सामना करें तो हम पर बड़े बड़े अपराध लगाए जायँगे। ऐसी दशा में हमें चाहिए कि जहां हम रहते हों, और वहाँ टीका लगवाने का रिवाज है, तो हमें लगवा लेना चाहिए। जो मनुष्य मेरे बताए हुए कारण से टीका लगवाने में धर्म-हानि समझता हो, और वह टीके के खिलाफ़ हो, तब तो उसे कानून के विरुद्ध होकर कष्ट उठाने चाहिएं। परन्तु जो मनुष्य केवल शरीरसुख के विचार से ही न लगवाना चाहे उसे कानून के विरुद्ध न होना चाहिए। ऐसे मनुष्यों में बहुत बुद्धि और दूसरों को समझाने की शक्ति होनी चाहिए। उसे लोक-मत पलटने के लिए तैयार होना चाहिए। बहुत काम हम अपनी इच्छा के विरुद्ध करते हैं— केवल उस समाज के लिए जिस में हम रहते हैं। अपनी सुवि-धाओं को छोड़कर समाज की सुविधाओं को देखना पड़त है। बहुमत के सामने कोई मनुष्य भी खड़ा हो सकता है; परन्तु ऐसे उदाहरण धर्म या नीति के सम्बन्ध में ही मिलते हैं। जिन मनुष्यों का कोई मत न हो—वे ऐसे लेखों को ही पढ़कर आवेश में आजावें और टीका न लगवाना चाहें—उनक

क़ानून के अधीन हो जाना चाहिए।

जो लोग टीका नहीं लगवाते, उनको स्वच्छता के नियमों को जानकर उनका अच्छी तरह पालन करना चाहिए। जो मनुष्य शीतला का टीका नहीं लगवाना चाहते; परन्तु विषय-सेवन द्वारा उसकी लस लेते हैं, या आरोग्य के दूसरे नियमों को छोड़कर दु:ख भोगते हैं, उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि जिस देश या समाज में टीका लगवाना लाभकारी माना जाता है, वे उसके विरुद्ध खड़े हों।

शीतला के सम्बन्ध में इस प्रकार विचार कर के टीके से हानियां दिखलाई गई हैं। अब शीतला को रोकने के उपायों के सम्बन्ध में विचार करने की जरूरत है। जो मनुष्य हवा, पानी और खुराक के नियमों का पालन होशियारी के साथ करेगा, उसे तो शीतला निकलने की सम्भावना ही नहीं, क्योंकि उसके खून में तो शीतला के बीजों के नाश करने की शक्ति मौजूद है। शीतला निकलने पर भीगी-चादर-वेष्टन (वेट-शीट-पेक) का इलाज बहुत चमत्कारिक होता है। बीमार को कम-से-कम तीन बार भीगी चादर में लपेटना चाहिए। जलन बहुत कम हो जायगी। शीतला के दाने मुरझा जायँगे। दानों में घाव हो जाने पर मरहम इत्यादि लगाने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि ऐसी एक आत्र जगह में, जहा मिट्टी की पुलटिस बांधी जासके, घाव हो तो पुलटिस बांध दें। रोगी को खाने के लिए भूख के अनुसार भात, नीबू, हलके ताज़े मेवे लेने चाहिएं। 'हलके' से यह मतलब नहीं है कि

शीतला की जलन में खजूर और बादाम जैसे पौष्टिक मेवे न खाने चाहिएं। वेट-शीट-पेक चादर के वेष्टन से एक सप्ताह में दाने ज़रूर मुरझा जाने चाहिएं। न मुरझांय तो समझना चाहिए कि अभी शरीर के अन्दर का बाकी ज़हर निकल रहा है। शीतला को भयंकर बीमारी समझने का कोई कारण नहीं है। बल्कि इससे तो यह सूचित होता है कि शरीर के अन्दर का उतना रोग निकल जाने से शरीर, नीरोग हो रहा है। यह बहुतेरे रोगों के लिए कहा जा सकता है; पर शीतला के लिए विशेष रूप से ठीक है।

शीतला का रोगी रोग दूर हो जाने पर कुछ दिन कमज़ोर रहता है। कितने रोगी बाद को किसी न किसी दूसरी बीमारी में फँसे देखे जाते हैं। इसका कारण उनके वे सब उपचार हैं जो बीमारी दूर करने के लिए किए जाते हैं। बुख़ार में कुनैन खाने से बहुत बार कान बहरे पड़ जाते हैं। व्यभिचार से होने वाले रोग मिटाने के लिए पारा इत्यादि दवाइयां खिलाई जाती हैं। और यह प्रसिद्ध बात है कि पारे से उत्पन्न होनेवाले रोगों से मनुष्य सदा पीड़ित रहता है। दस्त न होने पर जुलाब लेनेवालों को प्रायः बवासीर वगैरह की बीमारियां होती देखी जाती हैं। इन सब उदाहरणों से यह फल निकलता है कि दवा के प्रयोग से बीमारी तो मिटती ही नहीं; बल्कि उससे और रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रोग होने पर उसके कारणों की खोज की जानी चाहिए। फिर उन्हें दूर करके रोग को बिदा दें और आगे से प्रकृति के नियमों की रक्षा करें।

इससे बढ़कर दूसरी कोई पुष्टिकारक भस्म नहीं। धातु इत्यादि को फूंककर जो भस्में बनाई जाती हैं उन्हें अक्सीर दवाइयां कहा जाता है; परन्तु यह झूठी बात है। इनमें कुछ असर देख पड़ता है; परन्तु यह असर कितने ही अंश में शरीर के मनोविकारों को बढ़ाता है। सारांश यह है कि इनका असर रोगी के लिए हानिकारक ही होता है। शीतला की बीमारी में चादर के वेष्टन का प्रयोग सर्वमान्य समझा जाता है। शीतला अधिकतर फिर नहीं निकलती। इससे शरीर प्रायः नीरोग हो जाता है। सारा जहर निकल जाता है।

शीतला के दूर हो जाने पर जब दाने सूख जांय तब रोगी के शरीर पर सदा जैतून के तेल की मालिश करनी चाहिए। उसे रोज नहलाना चाहिए। इससे शीतला के दाग बिल्कुल जाते रहेंगे और शरीर मुलायम हो जायगा।

२—छूत के अन्य रोग

हम शीतला के विषय में अच्छी तरह विचार कर चुके हैं। अब रहीं शीतला की मौसेरी बहनें—पहाड़मती तथा मोतियादेवी वग़ैरह। इनके सिवा, प्लेग, कालरा, उड़ती पेचिस भी छूत के रोग हैं। हम पहाड़मती तथा छोटी शीतला से नहीं डरते। कारण, इनसे न बहुत मौतें होती और न शरीर ही बेडौल होता है। बाक़ी सब असर तो शीतला (बड़ी चेचक) ही के समान है। शीतला के समान इनकी भी छूत लग जाती है। इनमें ठंढे पानी का उपचार और 'वेट-पेक'

बहुत अक्सीर है। इन बीमारियों में खुराक बहुत ही हलकी और सादी होनी चाहिए। यदि ताजे मेवों और फलों पर निर्वाह किया जाय तो ये रोग बड़ी शीघ्रता से घटने लगते हैं।

प्लेग बड़ी भयंकर बीमारी है सन् १८९६ ई० में इसके मनहूस कदम हिन्दुस्तान में पड़े। तब से लाखों मनुष्य इसकी भेंट हो चुके। डाक्टरों ने बहुत सिर मारा; किन्तु अभी तक इसका कोई समुचित इलाज नहीं निकाल सके। आजकल शीतला के टीके के समान इस बीमारी के लिए भी टीका लगाया जाता है। इसके द्वारा मनुष्य में प्लेग के बुख़ार का हल्का असर उत्पन्न करके डाक्टर लोग समझते हैं कि इससे प्लेग का बुखार नहीं हो सकता। यह भी शीतला के टीके का सा ढोंग और उतना ही पापपूर्ण प्रयोग है। जैसे कोई यह नहीं कह सकता कि शीतला का टीका न लेने से शीतला निकलेगी ही, वैसे ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्लेग का टीका न लेने से प्लेग होगा ही। अब तक प्लेग की कोई दवा नहीं निकली, इसलिए यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि पानी और मिट्टी के उपचार से इसमें लाभ ज़रूर ही होगा। फिर भी जिसे मरने का भय न हो, जो मनुष्य ईश्वर पर विश्वास रखता हो, उसके लिए नीचे लिखे उपाय बताए जा सकते हैं:—

१—बुखार अथवा उसके कुछ भी चिन्ह दिखाई पड़ने पर तुरन्त ही भीगी चादरों का वेष्टन लेना चाहिए।

२—गिल्टी पर मिट्टी की मोटी पुलटिस बाँधनी चाहिए।

३—बीमार को खाना बिलकुल नहीं देना चाहिए।

४—प्यास लगे तो नीबू का ठंढा पानी देना चाहिए।

५—बीमार को साफ़ और खुली हवा में सुलाना चाहिए।

६—उसके पास एक आदमी के सिवा दूसरे को नहीं जाने देना चाहिए। प्लेग का बीमार यदि किसी भी इलाज से अच्छा हो सकता है तो वह इस इलाज से भी अवश्य अच्छा हो जायगा।

प्लेग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अब तक कोई निश्चित बात नहीं मालूम हुई। बहुतों की सम्मति में यह रोग चूहों द्वारा फैलता है। बात निराधार नहीं है। जहाँ प्लेग फैला हो वहाँ घरों को साफ़ रखने की बहुत ज़रूरत है। अन्न इत्यादि को इस प्रकार रखना चाहिए जिससे चूहों को खाने ही को न मिले और वे न आवें। चूहों के बिल इत्यादि बन्द कर देने चाहिएं और जिस घर से चूहों को दूर न रख सकें उसे ज़रूर खाली कर देना चाहिए।

प्लेग न होने देने के लिए सब से उत्तम तो यह है कि हम पहले ही से साफ़ और उत्तम भोजन करें, मिताहारी रहें, व्यसनों को छोड़ दें, कसरत करें, खुली हवा में रहें, घर इत्यादि साफ़ रखें और अपनी स्थिति ऐसी बना लें कि प्लेग की हवा हमें बिल्कुल न लग सके। हमें सदा ही ऐसी स्थिति में रहना उचित है। पर सदा न हो सके तो कम-से-कम प्लेग के दिनों में तो हमें इसी प्रकार चलना चाहिए।

प्लेग से भी विशेष भयंकर और शीघ्र उत्पन्न होने वाला रोग सन्निपात-ज्वर है। इसे अंग्रेज़ी में न्यूमोनिक-प्लेग कहते

हैं। इसमें बीमार को सांस लेने में बहुत कष्ट होता है। बुख़ार बड़े ज़ोर का रहता है और रोगी प्रायः बेहोश रहता है। इस कालज्वर से शायद ही कोई बचता हो। सन १९०४ई० में जोहान्सबर्ग में इसी प्रकार का प्लेग फैला था। तेईस बीमारों में केवल एक ही बचा था। इसका कुछ हाल पहले दिया जा चुका है। इस बीमारी पर वे सब उपचार चल सकते हैं जो प्लेग के लिए बताए गए हैं। फ़र्क केवल यह है कि इसमें मिट्टी का पुलटिस छाती के दोनों भागों पर बांधनी चाहिए। यदि रोगी को 'वेट-शीट-पेक' में रखने का समय न रह गया हो तो उसके सिर पर मिट्टी की पतली पुलटिस रखनी चाहिए। इस बीमारी में भी रोग के उपचारों की अपेक्षा पहले ही से उसके रोकने की तदबीरें करनी चाहिएं। बहुत ही सहज और अच्छी तदबीरें वही हैं जो प्लेग रोकने के लिए बताई जा चुकी हैं। बुद्धिमानी इसी में है कि रोग होने के पहले ही उसे रोकने का प्रयत्न किया जाय।

हैज़े की बीमारी को हम बहुत भयंकर समझते हैं। परन्तु असल में वह प्लेग से बहुत हलका है। इसमें वेट-शीट-पेक बहुत काम नहीं दे सकता। कारण, इसमे बीमार के बदन और जांघों मे सनसनी पैदा हो जाती है। ऐसे समय में पेट पर मिट्टी की पुलटिस बांधें और जहां पर सनसनी होती हो वहां गरम पानी की बोतलों से सेकें। बीमार के पैर इत्यादि पर राई के तेल की मालिश करें। खाना कदापि न दे। पास रहनेवालों को चाहिए कि बीमार को हिम्मत देते रहें

जिसमें घबड़ा न जाय। यदि उसे बहुत जल्द-जल्द दस्त आते हों तो चारपाई से अलग ले जाकर बिठाना ठीक नहीं। उसी पर एक बिना किनारे का छिछला बरतन रखकर पखाना फिराना चाहिए। यदि बीमारी शुरू होते ही इलाज की ऐसी व्यवस्था कर दी जाय तो बीमार को तकलीफ पहुँचना बहुत ही कम सम्भव है। हैजा फैलने पर उससे बचने के भी बहुत से उत्तम उपाय हैं। यह रोग प्रायः गरमी के दिनों में होता है। लोग एकदम कच्चे या सड़े फल खूब खाते हैं। दूसरे मौसम में फल खाने की आदत होती नहीं। गरमी के दिनों में अनेक प्रकार के फल पकते हैं और स्वाद में हम उन्हें खूब खाते हैं। रोज़ का भोजन तो करते ही रहते हैं। इससे हम पर इन फलों का एकबारगी बहुत बुरा असर पड़ता है। हमारे शरीर में पेट इत्यादि की कोई न कोई बीमारी तो बनी ही रहती है। जब शरीर उन्हें सँभाल नहीं सकता तब हैजा होजाता है। बीमार के पाखाने का कोई ख़ास बन्दोबस्त नहीं किया जाता। पाखाने के जन्तु हवा को बिगाड़ा करते हैं। इसके सिवा गर्मी के दिनो में पानी भी ख़राब रहता है। बहुत ज़्यादा सूख जाने के कारण पानी मैला होजाता है और उसमें जीव-जन्तु पड़ जाते हैं। इसे हम बिना छाने पीते हैं। फिर रोग कैसे न हो? प्रकृतिदेवी ने हमारा शरीर बहुत ही मज़बूत बनाया है। इसीसे हम इन सब ख़राबियों के होते हुए भी जा सकते हैं। यदि यह बात न हो तो अपने आचरणों की बदौलत तो हमें बहुत जल्दी संसार से कूच कर जाना चाहिए।

अब उन सब सावधानियो पर विचार करना चाहिए जो हैज़े के समय बहुत आवश्यक है। खुराक बहुत हल्की और थोडी हो। अच्छे मेवे ज़रूर खाये जाय, किन्तु खूब देख-भालकर। लोभ या स्वाद के वशीभूत होकर दागी सड़े हुए आम या दूसरे फल कदापि न खाने चाहिएं। साफ हवा में रहना आवश्यक है। पानी सदा उबालकर मोटे और साफ कपड़े से छाना हुआ पीना चाहिए। बीमार का पाखाना ज़मीन में गाडकर उस पर सूखी मिट्टी की मोटी तह डाल देनी चाहिए। यदि सब लोगो को पाखाना जाते समय उस पर राख डालने की आदत हो तो बीमारी का भय अधिकांश में बहुत कम होजाय। वास्तव में तो इस नियम को बराबर पालन करने की आवश्यकता है। बिल्ली तक ज़मीन में गढ़ा खोदकर पाखाना फिरता है और पैरों द्वारा मिट्टी डालकर उसे ढक देती है। परन्तु हम छुआछूत या घृणा के मारे ऐसा नहीं करते और इस प्रकार बीमारी फैलने में मानों हम एक प्रकार से सहारा देते हैं। यदि राख न मिल सके तो सूखी मिट्टी काम में लानी चाहिए।

फैलती हुई पेचिश बहुत मामूली छूत का रोग है। इसमें यदि पेड़ू पर मिट्टी की पुलटिस का ठीक उपयोग किया जाय और बीमार को खाना बिलकुल न दिया जाय तो यह बहुत जल्द जाती रहती है। बीमार के पाखाने को ऊपर लिखी रीति से गड़वा देना भी ज़रूरी है। पानी के विषय में भी हैजे के अनुसार सावधानी रखनी चाहिए।

उपर्युक्त छूत की बीमारियों में रोगी तथा उसके पास रहनेवालों को हिम्मत नहीं छोड़नी चाहिए। भय से घबराकर बीमार तो मर ही जाता है; किन्तु उसके आस-पास रहनेवाले मनुष्यों के भी बीमार होजाने की सम्भावना रहती है।

—

मुद्रक—बाँकेलाल शर्म्मा इलाहाबाद प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद

तरुण-भारत-ग्रन्थावली

[सम्पादक पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी]

स्थायी ग्राहक बनने के नियम

१--इतिहास, जीवनचरित्र, सदाचार और नीति, विज्ञान, कविता, आख्यायिका, सुरुचिपूर्ण नाटक, उपन्यास इत्यादि विषयों के उत्तमोत्तम ग्रन्थ सुलभ मूल्य पर प्रकाशित करना इस ग्रन्थावली का मुख्य उद्देश्य है।

२—आठ आना प्रवेशफीस भेजकर सब लोग इसके स्थायी ग्राहक बन सकते हैं।

३—स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थावली के सब अगले और पिछले ग्रन्थ पौनी कीमत पर, यानी एक-चौथाई कमीशन काटकर, दिये जाते हैं। वे ग्रन्थावली के प्रत्येक ग्रन्थ की चाहे जितनी प्रतियां, चाहे जितनी बार, पौने मूल्य पर ही प्राप्त कर सकते हैं

४—कोई भी नवीन ग्रन्थ निकलने पर दस-बारह दिन पहले उसका वी० पी० भेजने की सूचना स्थायी ग्राहकों के दे दी जाती है। ग्राहकों को वी० पी० वापस नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे कार्यालय को व्यर्थ की हानि उठानी पड़ती है।

५—जिन ग्राहकों का वी० पी० तीन बार लगातार वापस आता है, उनका नाम स्थायी ग्राहकों से अलग कर दिया जाता है।

६—प्रत्येक मातृभाषा-हितैषी का परम पवित्र कर्त्तव्य है कि इस ग्रन्थावली के स्थायी ग्राहक बनकर हमारे इस शुभ कार्य में सहायता करे। क्योंकि हमारा उद्देश्य केवल पुस्तकों का व्यापार ही नहीं है; बल्कि हिन्दी-साहित्य में सुरुचिपूर्ण ग्रन्थों का विस्तार करना हमारा मुख्य लक्ष्य है। हिन्दी-साहित्य की आवश्यकता को ही देखकर हम ग्रन्थों का चुनाव करते हैं।

धर्मशिक्षा

(लेखक—पं० लक्ष्मीधर जी बाजपेयी)

इस पुस्तक में निम्नलिखित विषयों पर सप्रमाण व्याख्यान दिये हुए हैं:—धर्म, धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि या विवेक, विद्या, सत्य, अक्रोध, धर्मग्रन्थ, चार वर्ण, चार आश्रम, पंचमहायज्ञ, सोलह संस्कार, आचार, ब्रह्मचर्य या वीर्यरक्षा, दान, तप, परोपकार, यज्ञ, ईश्वरभक्ति, गुरुभक्ति, स्वदेशभक्ति, अतिथिसंस्कार, प्रायश्चित्त, अहिंसा, गोरक्षा ब्राह्ममुहूर्त, स्नानसंध्या, व्यायाम, भोजन, निद्रा, ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, इत्यादि। अन्त में सैकड़ों सुभाषित श्लोक अर्थ-सहित दिये गये हैं। थोड़े ही समय में इस पुस्तक के चार चार संस्करण हो चुके हैं। इसीसे इसकी उपयोगिता प्रकट है। पृष्ठसंख्या पौने तीन सौ। मूल्य सिर्फ १) रु० है।

गार्हस्थ्यशास्त्र

(लेखक—पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी)

इस पुस्तक में गृहस्थी का प्रारम्भ, घर कैसा हो, घर की स्वच्छता, वायु का प्रबन्ध, शौचकूप और शौचक्रिया, स्नान और स्नानागार, शयन और शयनागार, भंडारघर, रसोईघर, घर की फुलवाड़ी, आमदनी और खर्च, रुपया कैसे और कहां रखें, कपड़े और उनकी व्यवस्था, कपड़े धोना कपड़े रंगना, फसल पर सामान खरीदना आभूषण, त्योहार-उत्सव धर्मादाय, गृहशोभा का सामान, सामान की सफाई, वर्तन-भांडे चिराग-बत्ती नौकरचाकर, गाय-भैंस, जल का प्रबंध, चाय पानी, स्त्रियों के व्यवसाय, सौर का प्रबंध, शिशुपालन, रोगीसेवा, स्त्रीरोग चिकित्सा, बाल रोगचिकित्सा, अन्य रोग, विष और विषैले जन्तुओं की चिकित्सा इत्यादि विषयों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। घर में बहिन बेटियों को उपहार में देने योग्य ऐसी एक भी पुस्तक हिन्दी में नहीं है। मूल्य लागतमात्र सिर्फ १) रु० है।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकें

ब्रह्मचर्य

(लेखक—महात्मा गांधीजी)

इस पुस्तक को पढ़कर हर एक मनुष्य अपने जीवन को सुधार सकता है। व्यभिचारी पुरुष ब्रह्मचारी बन सकता है। दुर्बल मनुष्य सिंह की तरह बलवान् तथा दुरात्मा भी सदाचारी व साधु हो सकता है। जो पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन न करके अपना जीवन नष्ट कर देते है और औषधियों के दास बने रहते हैं, वह अपने जीवन का लाभ नहीं उठा सकते। इस पुस्तक को पढ़कर इसके बताए हुए नियमों का पालन कर अनन्त जीवन प्राप्त करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को माहत्मा जी की इस पुस्तक की एक एक प्रति अपने पास रखनी चाहिये। पुस्तक का मूल्य सिर्फ ॥) है।

उषःपान

(लेखक—पण्डित लक्ष्मीप्रसाद जी पाण्डेय)

प्रातःकाल नासिका-द्वारा जल चढ़ाने के लाभ और उसकी सरल तरकीबें इस पुस्तक में बतलाई गई है।

उषःपान प्रातःकाल रात के चौथे पहर, उषःकाल में सूर्योदय के पहले किया जाता है। यह प्राचीन ऋषियों और योगियों की निकाली हुई स्वाथ्य-सम्पादन की प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली है। इसी प्रणाली का खुलासा वर्णन इस पुस्तक में पांडेयजी ने किया है। पुस्तक में निम्न-लिखित सात अध्याय हैं :—

१ आरोग्य और प्राकृतिक चिकित्सा २ पानी की उपयोगिता ३ उषःपान किस तरह किया जाय ४ शरीर में उषःपान का कार्य ५ उषःपान और रोगनाश ६ उषःपान के विषय में भिन्न भिन्न वैद्यों के अनुभव ७ उषःपान के लिए शास्त्र-प्रमाण।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। मूल्य सिर्फ ।-) है।

अध्ययन किन पुस्तकों का ?

जीवन में अध्ययन का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए अपने अध्ययन के लिए पुस्तकें चुनने में आपको सावधानी से काम लेना चाहिए।

जो पुस्तकें आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् मानव जाति के उत्थान में सहायक होने की दृष्टि से निकाली जाती हैं, मनुष्य को सच्चा रास्ता दिखाने में अधिक सहायक होती हैं।

अतः आप अपने जीवन को गढ़नेवाली पुस्तकें चुनने में साव-धानी से काम लीजिए। आपका भविष्य इस पर निर्भर रहता है।

इसी लक्ष्य को सामने रखकर 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। आप उन्हें पढ़िए। उनमें से कुछ के नाम पीछे दिये जाते हैं।